पथम अध्याय

पथम अध्याय : विषय पवेश

1.1 पस्तावना

साहित्य अर्थात् जो सभी के हित के लिए लिखा गया हो। साहित्य में सबका हित निहित होता है, जो बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के लिए होता है। साहित्य शब्द का अर्थ सभी के लिए समान है किन्तु जैसे जैसे साहित्य का विकास होता गया वैसे वैसे साहित्य का विभाजन होता गया। इससे पूर्व साहित्य का विभाजन भाषा या काल पर आधारित था, वर्ण या वर्ग पर नहीं जैसे आज का दलित साहित्य। दलित कोइ जाति नहीं है यह मुक्ति और क्रांति का पतोक है और दलित साहित्य दलितों का हथियार है। दलित साहित्य मार्क्स की नजर में सर्वहारा साहित्य है और डॉ. आम्बेडकर की दृष्टि से दलित–साहित्य कहा जाता है। जिसे 'डिपस्ड क्लास' भी कहा जाता है। दलित साहित्य कटुता और वैमनस्य के कारण ही अस्तित्व में आया है। आज जो थोडी सी छूताछात में कमो देखने में आती है उसका कारण आत्म–मंथन नहीं दण्ड का भय अधिक कारगर रहा है और यह दण्ड का अधिकार दिया है संविधान ने, संविधान दिया है बाबासाहेब ने। देश की इस जाति समस्या को बडी चालाकी के साथ कभो देश–पम और राष्ट्रीय भावना व अखण्डता के नाम पर पीछे किया जाता रहा है। सन् 1998 से पहले जितने जातिगत दंगे होते थे उसमें एकदम कमो आई है। इसका एक मात्र कारण रहा है दलितों में जागृति का आना और यह जागृति उनमें दलित साहित्य आन्दोलन से आई है।

आधुनिक काल में लिखी गयी रचनाओं में हमें काफी नयापन दृष्टिगत होता है। दैनिक जीवन के अनेकानेक परिवर्तन साहित्य के पचार पसार की विविध सुविधाएँ और जिन परिस्थितियों में आधुनिक साहित्य पल्लवित हुआ वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। साहित्य के कई पहलू है। दलित साहित्य भी उन्हीं पहलुओं मे से एक है। साहित्य समाज को बदलता है और इसी बदलाव की आशा लेकर बीसवी सदी के आठवें दशक में दलितों ने अपनी विचारधारा को साहित्य के माध्यम से लोगों के सामने रखा है। अपने अस्तित्व के पति जागृकता लाने का पयत्न किया। साथ ही दलित साहित्यकारों

ने उनक द्वारा लिखे गये साहित्य को एक विमर्श का रूप दे दिया और यही छोटा–सा पांधा आज दलित साहित्य रुपी विशाल वृक्ष में परिवर्तित हो चुका है।

1.2 दलित का अर्थ

आधुनिक भारत मे जाति पथा एक चुनौती है। पिछले तीस सालों से दलित साहित्य अपनी एक अलग छबी बनाए हुए हैं। दलित साहित्य दलितों का साहित्य हैं। दलितों की पीडा से उपजा हुआ साहित्य है। वे दलित कौन थे, यह जानने के लिए मराठी और हिन्दी दलित लेखकों की दलित विषयक परिभाषा को समझना जरूरी है।

हिन्दी साहित्य के दलित चिंतकों ने दलित और दलित साहित्य को इस पकार परिभाषित किया है।

1. डॉ. श्याजराज सिंह बेचैन ने दलित को इस पकार व्याख्यायित किया है, "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है।"[1]

2. मोहनदास नैमिशराय के शब्दों में, "दलित शब्द सर्वहारा वर्ग का समानार्थी लगता है। लेकिन इन शब्दों में पर्याप्त भेद भी है। दलित की व्याप्ति अधिक है तो सर्वहारा की सीमित।"[2]

3. डॉ. नगेन्द लिखतें है – "गर्ग संहिता में दलित के लिए दास शब्द भी पयुक्त हुआ है – दुर्जना शिल्पिनों दासा: दुस्टाश्य पटहा: स्त्रिया: ताडित: पार्दव यान्ति नै ते सात्कारभाजिन:।"[3]

4. डॉ. कुसुमलता मेघवाल दलित की परिभाषा करते हुए लिखती है कि, "दलित का शाब्दिक अर्थ है कुचला हुआ। अत: दलित वर्ग का सामाजिक संदर्भों में अर्थ होगा वह जाति समुदाय जो अन्याय पूर्वक सवर्णो या उच्च जातियों द्वारा दमित किया गया हो, रौंदा गया हो दलित शब्द व्यापक रूप में पीडित के अर्थ में आता है, पर दलित वर्ग का पयोग हिन्दू समाज–व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परागत रूप में शूद माने जाने वाले वर्णो के लिए रूढ हो गया है। दलित वर्ग में वे सभी जातियाँ सम्मिलित हैं, जो जाति सोपान कम में निम्न–स्तर पर हैं और जिन्हं सदियों से दबाकर रखा है।"[4]

5. आधुनिक भारतीय साहित्य के सन्दर्भ में श्री भगवान सिंह अपने गंथ में लिखते है कि, "दलित वह है जिसका, दोहन एवं शोषण होता रहा है तथा समाज में जो वंचित उपेक्षित एवं पताडित रहा

है। शोक जिसका आहार अश्रु जिसका उदगार और अभिशाप जिसका उपहार रहा है, वह दलित है। बहिष्कार जिसका सत्कार, बेगार जिसका दैनिक त्यौहार और दुत्कार, फटकार एवं तिरस्कार जिसका पुरस्कार रहा है, वह दलित है। अभाव जिसका भाग्य, अन्याय जिसका साक्ष्य और विलाप जिसका काव्य रहा है, वह दलित है। अपमान जिसका पतिमान, पुरुषार्थ जिसका धनुष बाण और अंगूठा जिसका अनुठा दान है, वह दलित है विपत्ति जिसकी नियति, संपत्ति जिसकी स्वप्निल, स्मृति और कांति जिसकी अंत्यज पवृत्ति रही है, वह दलित है। मौन जिसकी वाणी, कृंदन जिसकी कहानी और वेदना जिसकी रानी है, वह दलित है। श्रम को साध्य और कर्म को आराध्य मानकर भी दैन्य देश झेलने के लिए जो सदैव बाध्य रहा है, वह दलित है।"[5] पाचीन साहित्य से लेकर आधुनिक भारतीय साहित्य के संदर्भ में जो दलित शब्द का व्यापक अर्थ है उससे भगवान सिंह सहमत है।

6. अमेरिकी विदुषी एलनार जीलियट कहतो हैं कि, "दलित एक सामान्य रूप से पहचान है उन भारतीय लोंगों की जो सामाजिक रूप से अछूत, शूद, बहिष्कृत, उत्पीडित दबे और पिछडे हैं।"[6]

7. डॉ. आर्नद वास्कर कहते है कि, "गाँधीजी ने हरिजन, श्री मगोरे ने अस्पृश्य, डॉ. आम्बेडकर ने बहिष्कृत व अछूत शब्द का पयोग दलित शब्द के अर्थ में किया है। दलित शब्द आधुनिक है और दलितपन पाचीन। अतः पाचीन साहित्य में शुद, चांडाल, अंत्यज आदि शब्द दलित के पुरखे हैं।"[7]

8. अरुणाचल पदेश के पूर्व राज्यपाल आदरणीयश्री माता पसाद दलित साहित्य की पमुख रचनाए नामक लेख में दलित की परिभाषा इस पकार करते है, "दबाया गया, गिराया गया, अलग किया गया उत्पीडित, उपेक्षित, बहिष्कृत, अपमानित, शोषित आदि। मुख्यतः समाज में शस्त्र और शास्त्र से पीडित, अपमानित और शोषित समुदाय आते हैं उनमें जहा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, धुमंतु जातियाँ, बंधुवा मजदूर, झोंपडपट्टियों में रहकर नारकोय जीवन जीने वाले भी आते हैं।"[8]

9. ओम पकाश वाल्मीकि दलित की परिभाषा इस पकार करते है कि, "दलित शब्द का अर्थ है, जिसका दलन और दमन किया गया है, दबाया गया है, उत्पीडित, शोषित, सताया हुआ, गिराया

हुआ, उपेक्षित, धृणित, रोंदा हुआ, मसला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त हिम्मत, हतोत्साहित वंचित आदि। अगर स्पष्टतः कहा जाए तो वर्ण व्यवस्था में जिसे अछूत या अंत्यज की श्रेणी में रखा।"[9]

मराठी साहित्य के सुपसिद्ध लेखकों ने दलित शब्द को इस पकार परिभाषित किया है।

1. बाबुराव बागुल के अनुसार, "दलित वह है जो वर्ण व्यवस्था और उसकी मानसिकता को घ्वंस्त कर देना चाहता है। दलित इस विश्व और जीवन को नये रूप में ढालना चाहता है। जिसके हाथों को इस युग ने परावंत पलयकारी बनाने के लिए शस्त्रां तथा शास्त्रां को उपलब्ध कर दिया है।"[10]

2. डॉ. सदा क–हाडे ने दलित शब्द परिभाषित करते हुए कहा है कि "आर्थिक दृष्टि और सामाजिक दृष्टि को मिलाकर एक समावेशन को दलित वर्ग कह सकते हैं। इसमें कर्मचारी खेत–मजदूर आजीविका पाप्त करने हेतु श्रम करने वाले और अस्पृश्य भी आते है।"[11]

3. अर्जुन डांगळे का कहना है कि, "दलित अति शोषित पीडित समाज धर्म व अन्य कारणों से जिसका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शोषण किया जाता है वह मनुष्य।"[12]

4. मराठी कवि नारायण सुर्वे का मानना है कि "दलित का अर्थ केवल बौद्ध या पिछडी जातियां ही नहीं समाज में जो भी पीडित है वह दलित है।"[13]

5. नामदेव ढसाळ के अनुसार, "अनुसूचित जातियां बौद्ध, श्रमिक, भूमिहीन, कृषक, भटकने वाली घुमतु जातियां और आदिवासी सभी दलित हैं।"[14]

6. केशव मेश्राम के शब्दां में, "हजारों वर्षों से जिन पर अन्याय हुआ है, एसे अस्पृश्यों को दलित कहा जाना चाहिए।"[15]

7. पो. यशवंत मनोहर शोषितों की अलग जाति बताते हैं कि–"शोषितों की जाति शोषण के कारण सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक आदि अनेक कारणों से अमानवीयता की पगति में जो सबसे पिछडा रह गया हो और उसे सामाजिक वर्गो में सबसे दूर रखा गया हो अर्थात् अनेक कारणों से अंधेरों मे वास करने वाले शोषितों के रिश्तेदार तथा संबधियों का समूह ही दलित है।"[16]

8. डॉ. मांडे दलित की व्याख्या निम्न रूप से करते हुए कहते हैं कि, "एसे व्यक्तियों के समूह को दलित कहा ज़ाना चाहिए जिनका मनुष्य के रूप में जोने का अधिकार छीन लिया गया हो। जिन

पर जन्म से ही विशिष्ट पकार स जीवन व्यतीत करने के लिए जबरदस्ती की जातो हे, मनुष्य के रूप में उनकी पतिष्ठा को नकारा गया है और जिन्ह सन्मान की जिन्दगी बसर करने से वंचित रखा गया है, वे दलित है।"[17]

इन सभी परिभाषाओं को देखते हुए एक बात निश्चित है कि आज जिसे हम दलित कहते हैं वह है-जिनका अनुसूचित जातियों में समावेश हुआ है। दूसरे शब्दों में यदि कहना हो तो यह कह सकते हैं कि जिनको अस्पृश्यता के दंश को झेलना पडा हैं वह दलित है।

1.3 दलित साहित्य से तात्पर्य

साहित्य के क्षेत्र में नई चेतना का जन्म सामाजिक, सांस्कृतिक, अभिसरण के फलस्वरूप होता है। हर बार यही देखा गया है कि समाज में होने वाले परिवर्तनां का सही रूप साहित्य में पकट होता है। दलित-साहित्य, सामाजिक परिवर्तन की माँग को लेकर पस्तुत हुआ है। मनुष्य की एक नई पहचान करानेवाले साहित्य के रूप में दलित साहित्य उभरा है।

दलित लेखन केवल लेखन नहीं है, वह कृति है, जो दृष्ट पवृत्तियों के विरूद्ध मनुष्य के सतत संघर्ष में मददरूप होती है। इसी लेखन को एक हथियार समान उपयोग में लाने की जरूरत को तथा लेखन के महत्त्व को दलित लेखक अच्छी तरह से जान चुके हैं। इस विषम समाज व्यवस्था के खिलाफ इस हथियार का सही अर्थो में उपयोग होना चाहिए। समाज में नई चेतना जगाने के पयत्न निरंतर होने चाहिए। मानव होन के नाते मानव अधिकार पाप्त करने का हर मानव का कर्तव्य है। जातिपाँति और ऊँच-नीच के भेदभाव को नष्ट करने पर जोर देने हेतु तत्कालीन मराठी एवं हिन्दी के कुछ लेखकों की कृतियों में यह कोशिश की चिनगारी नजर आती है। इस चिनगारी को पकाश में बदलने के लिए यह विषय महत्त्वपूर्ण है। दलित साहित्य अपने आप में एक विधा है। जिसे दलित लेखकों ने इस पकार परिभाषित किया है।

1. दलित साहित्य क सुपसिद्ध लेखक, विचारक एवं चिन्तक डॉ. एन. सिंह के अनुसार, "दलित साहित्य दलित लेखकां द्वारा लिखा गया वह साहित्य है जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मानसिक रूप से उत्पीडित लोंगों की बेहतरी के लिए लिखा गया हो, जो सच्चे अनुभवों पर आधारित है और जीवंत भाषा में लिखा गया है।"[18]

2. दलित चिंतक कंवल भारती की धारणा है कि, "दलित साहित्य से अभिपाय उस साहित्य से ह जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीडा को रूपायित किया है। अपने जीवन संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा ह, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है इसीलिए कहना न होगा कि वास्तव में दलितों के द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।"[19]

3. डॉ. सी. बी. भारती की मान्यता है कि, "नवयुग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक परम्पराओं क पूर्वागहो से मुक्त साहित्य सृजन है, उस हम दलित साहित्य के नाम से संज्ञायित करते हैं।"[20]

4. राजेन्द यादव के अनुसार, "दलित साहित्य उन अछूतों का साहित्य है। जिन्हे सामाजिक स्तर पर सन्मान नहीं मिला, सामाजिक स्तर पर जाति भेद के जो लोग शिकार हुए हैं, उनकी छटपटाहट ही शब्दबद्ध होकर दलित साहित्य बन रही है।"[21]

5. डॉ. पुरूषोत्तम सत्यपमी कहते हैं "दलित साहित्य आन्दोलन मात्र दलित मुक्ति का ही साधन नही है अपितु यह साहित्यिक आंदोलन में स्वाभिमान सम्मान को विकसित करने का एक कांतिकारी कदम है अर्थात् दलित साहित्य अस्तित्व दर्शी साहित्य है।"[22]

6. भगवानदास ने अपने लेख में दलित साहित्य को इस पकार परिभाषित किया है। "दलित साहित्य सही मायनों म वह साहित्य है, जिसे दलितों ने अपने ज्ञान, अपने तजुर्बे, अपनी कठिनाइयों और पीडा के आधार पर लिखा।"[23]

7. हिन्दी के माने हुए साहित्यकार बुद्धशरण हंसली के अनुसार, "सिर्फ पीडा की अभिव्यक्ति को दलित साहित्य नहीं मानना चाहिए पीडा में पर्यवसन आवश्यक मानते हुए कहते है कि दलित साहित्य कोई मुसिया नहीं है जो दलितों की दीनता और दुर्दशा पर लिखा पढा जाए। दलित साहित्य को दलितों की दुर्दशा का शोक साहित्य नहीं बनने देना चाहिए। दलित साहित्य को शक्ति और परणा का साहित्य बनाना है।"[24] दलित साहित्य शक्ति का स्रोत और संदेशों की सरिता बने, एसा पयास दलित साहित्यकारों को करना है।

मराठी के सुपसिद्ध लेखकों ने दलित साहित्य की व्याख्या इस पकार की है :-

1. बाबुराव बागुल का मानना है, “मनुष्य की मुक्ति का पुरस्कार करने वाला, मनुष्य को महान मानने वाला, वंश, वर्ण और जाति के श्रेष्ठत्व का कठोर विरोध करनेवाला जो साहित्य है वही दलित साहित्य है।”[25]

2. त्र्यं. वि. सर देशमुख के अनुसार, “दलित जीवनका दर्शन देने वाला दलितों क विचारों और भावों को पकट करने वाला, दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है।”[26]

3. मराठी कवि नारायन सुर्वे ने दलित साहित्य को इस पकार व्याख्यायित किया है दलित साहित्य की संज्ञा मूलतः पश्नसूचक हैं। महार, चमार, मांग, कसाइ भंगी जैसी जातियों की स्थितियों के पश्नों पर विचार तथा रचनाओं द्वारा उसे पस्तुत करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य हैं।[27]

4. गंगाधर पानतावणे दलित साहित्य का इस पकार पकट करते हैं- “दलित साहित्य स्वातंत्र्य व्यक्तित्व का ज़ाहिरनामा हैं।”[28]

5. बाबुराव बागुल के विचारों स सहमतो दर्शाते हुए दया पवार का कहना है कि, “मध्यमवर्गीय समाजाने स्वीकारलेल्या जाणिवेला छेद देनारी तला गाला तील माणसा बद्दल आपुलकी बालगणारी वरील र्कजबंद व्यवस्थला नकार देऊ इच्छिणारी जी कांतिकारो जणीव तीच दलित जाणीव।”[29]

6. राजा ढाले के अनुसार, “जो भी इस समाज रचना के विरूद्ध और सांस्कृतिक मुद्दो के विरूद्ध लडाकु दृष्टिकोण लेकर साहित्य निर्माण करेगा और पथ से भटके हुए समाज को पथ पर लाएगा, वही दलित साहित्यकार है और जिसका साहित्य दलितों के दृष्टिकोण से लिखा गया होगा।”[30]

7. पा. केशव मेश्राम कहते हैं कि, “हजारों वर्ष जिन पर अन्याय हुआ उन्हें दलित कहना चाहिए केशव मेश्राम की व्याख्या बहुत ही सरल और सहज है।”[31]

8. डॉ. म. ना. वानखडे के अनुसार “दलित साहित्य अर्थात लेखकों ने दलितां के लिए निर्माण किया हुआ विदोही साहित्य।”[32]

9. गो. पु. देशपांडे कहते है कि, “दलित साहित्य दलितों के लिए लिखा गया साहित्य न होकर दलित संवेदन शीलता से जन्मा हुआ साहित्य है।”[33]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि दलित साहित्य एक वैचारिकता है जो संवेदना से जुडा है। जिसका ध्येय महान है। दलित साहित्य वर्ण और जाति–पाँति के भेदभाव का कठोर विरोध करने वाला और बंधन मुक्त मानव का विचार करने वाला साहित्य है। जिसका ध्येय दलितों को मानवीय गरिमा पदान करना है।

मराठी के पसिद्ध लेखक आलोचक शरणकुमार लिंबाले के अनुसार, "दलितों का दु:ख परेशानी, गुलामो, अध:पतन और उपहास के साथ ही दरिदता का कलात्मक शैली से चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। आदि का उदात्त स्वरूप है वही दलित साहित्य है।"[34]

वामन निंबालकर का कहना है कि, "भारतीय जीवन में कल के दलितों के अनुभव में दिखाई देनेवाला परिवर्तन ही दलित साहित्य की जननी है।"[35]

दलित साहित्य को परिभाषाओं में बाँधना कठिन है। एक मान्यता है कि दलित लिखें वहीं दलित साहित्य है। हमारे मत के अनुसार जिनका भी शोषण हुआ है स्त्री हो या पुरूष यदि वह अपने साथ हुए अन्याय को कलम द्वारा वाणी प्रदान करता है तो उस लिखावट को दलित साहित्य के अंतर्गत समाविष्ट जा सकता है। दलितों का साहित्य केवल दलितों के लिए नहीं है यदि एसा है तो वह साहित्य की कोटी में नहीं आ सकता। क्योंकि साहित्य तो सभी के हित के लिए होता है। चाहे दलित हो या अदलित उसे साहित्य से अलग नहीं रखा जा सकता है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध साहित्यकार कमलेश्वर जी भी दलित साहित्य को महाराष्ट्र की ही नहीं, बल्कि भारत की रचनात्मक संम्पदा मानते हैं। गाँधीजी का कहना है कि "हम सब लोग पूरी तरह से समान हैं, लेकिन समता आत्मा की है शरीर की नहीं। वह मानसिक अवस्था है। हमें हमेशा समता का विचार करना चाहिए तथा वैसा ही आचरण करने का आग्रह रखना चाहिए।"[36] दलित साहित्य इस समाज की संकीर्ण मनोवृत्ति, विषम परिस्थिति अन्याय और अत्याचार को, मानव के पति मानवता को दलितों की पीडा को व्यक्त करनेवाला, उनके पति संवेदना दर्शाने वाला तथा दलितों के अस्तित्व की पहचान कराने वाला साहित्य दलित साहित्य है।

जिस तरह दलित कौन है? इस पश्न को लेकर विवाद है उसी पकार दलित साहित्य को लेकर अनेक भान्तियाँ हैं। समगतया हमारा मानना है कि व्यापक अर्थ में अगर देखे तो जिनका भी शोषण हुआ हैं, वह दलित है। परन्तु अभी यह तय हो चुका है कि दलित लिखे वही दलित साहित्य है। परंतु याद रहे दलित दलित संवेदना को लेकर लिखता है। वही उस कोटि में आएगा। पश्न ये भी है दलित

साहित्य अदलित लिख सकते हैं या नहीं? हमारा मंतव्य है कि वह भी दलित साहित्य लिख सकते हैं, परंतु वह संवेदना और पाण पश्न आने चाहिए जो दलित साहित्य के लिए आवश्यक है।

1.4 दलित साहित्य की महत्ता

उच्च जातियों ने दलितों पर जो भी अत्याचार किये हैं। उनके साथ सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक रूप से जो अन्याय हुआ है। जितनी भी पीडाएं दलितों ने भोगी है उसका कच्चा चिठ्ठा हमें दलित साहित्य में पाप्त होता है फिर चाहे वह मराठी दलित साहित्य हो या फिर हिन्दी दलित साहित्य। यह बार बार कहा गया है कि दलित साहित्य का केंद बिंदू मनुष्य है और दलित साहित्यकारों ने मानवता को बार बार पुकारा है। धर्म की साजिश द्वारा छीनी हुई पतिष्ठा और सन्मान पाप्त करने के लिए यह साहित्य पतिबद्ध है। यह समाज चेतना का एसा माध्यम है जिससे समाज की वास्तविकता रचना के माध्यम से समाज के सामने पस्तुत हाती रही है।

दलित रचनाकारों और अन्य लेखकां ने भी दलित साहित्य की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना है। मराठी के विख्यात दलित लेखक बाबुराव बागुल भी इसी मान्यता पर बल देते हैं कि दलित साहित्य का केंद बिंदू मानव है और वह मानव क इंद गिर्द घुमता है।37

शरण कुमार लिम्बाले भी दलित साहित्य को अपना केंद बिंदू मनुष्य को मानते हुए वे कहते हैं कि दलित साहित्य की वेदना, मैं की वेदना नहीं वह बहिष्कृत समाज की वेदना है।38

साहित्य की भूमिका को रेखांकित करते हुए जनवादी लेखिका रमणिका गुप्ता का मानना है कि दुनिया का नब्ब पतिशत साहित्य आज़ादी की चाह के लिए ही लिखा जाता रहा है। दलित साहित्यकार आजादी के साथ साथ बंधुत्व की चाह को भी समान स्तर पर रखकर साहित्य रचता है।39

दलित साहित्य का उद्देश्य समाज को भेद भाव से मुक्त करना है। दलित साहित्य मानव के जन्मसिद्ध अधिकारों को पाप्त करने के लिए है। दलित साहित्य की आवश्यकता समझाते हुए रमणिका गुप्ता का कहना है कि, "इश्वर की नजर में सभी मनुष्य समान है। किन्तु मनुष्य की नजर में मनुष्य समान क्यों नहीं है? इस पश्न का उत्तर हमें दलित साहित्य में मिलता है।"40

मोहनदास नैमिशराय दलित साहित्य की आवश्यकता पर चर्चा करते हुए कहते है कि, "शोषण वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज में समता, बन्धुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।"41

दलित साहित्य उस हथियार क समान है,जिससे हम बुराई को मिटाकर अच्छाई का पक्ष ले सकते हैं। दलित साहित्य का उद्देश्य समाज को नई राह दिखाना है। उसे अंधेरे से उजाले की ओर ले जाना है। अर्जून डांगळ दलित साहित्य के उद्देश्यों के संदर्भ में कहत है कि, “सामाजिक व्यवस्था और विषमता के विरूद्ध आन्दोलन खडा कर एक नये समाज का निर्माण करना हो दलित साहित्य का पमुख उद्देश्य है।”[42]

दलित साहित्य सिर्फ अपने लिए ही नहीं बल्कि समाज और उसकी भलाई के लिए लिखा गया साहित्य है। इसलिए दलित साहित्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। सदियों से चले आ रहे दलितों पर किए गए अत्याचार और शोषण से हमें अवगत कराता है। परम्परावादी सोच से हमें मुक्त कराता है। दलितों की पीडा का एहसास दिलाता है। ओमपकाश वाल्मीकि के अनुसार साहित्यकार अपनी सामाजिक पतिबद्धता के साथ रचना-कर्म से जुडकर साहित्य की सजनात्मकता में मानवीय सरोंकारों, संवेदनाओं और स्वतंत्रता, भाईचारे की भावनाओं को स्थापित करता है।

दलित-चिंतन ने नया आयाम देकर साहित्य की भावना का विस्तार किया है। पारम्परिक और विस्थापित साहित्य को आत्मविश्लेषण और पुनर्विश्लेषण के लिए बाध्य किया है। गलत और अतार्किक मान्यताओं का निर्ममता से विरोध किया है। अपने पूर्व साहित्यकारों के पति आस्थावान रहकर ही नही, बल्कि आलोचनात्मक दृष्टि रखकर दलित साहित्यकारों ने पुनर्मूल्यांकन की कोशिश शुरू की है। जिससे उसकी जडता टूटी है। दलित साहित्य आधुनिकता और समकालोनता की ओर अगसर हुआ है।

आज का पाठक दलित साहित्य को पढकर दलित लेखकों की व्यथा -वेदना जान पाएगा उनके दु:ख और समस्याओं को समझ पाएगा। दलितों पर विचार विमर्श के लिए परित करने में दलित साहित्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसलिए दलित साहित्य भारतीय साहित्य की अनोखी धारा है। जिसने हिन्दी साहित्य को ही नहीं बल्कि भारतीय साहित्य को भी समृद्ध बना दिया है। दलित साहित्य ने हिन्दी साहित्य को नये आयाम पर पहुंचाया है। नये शब्द, पतीक, भाषा, अनुभव, नई विचारधारा, वेदना और विदोह की अनुभूति पदान को है और नये पश्नां और मसलों पर पाठक समीक्षकों को सोचने पर मजबूर कर दिया है। दलित साहित्य पाठकों की रूचि में बदलाव लाने और समीक्षकों की समीक्षा को विस्तार देने में मददरूप हुआ है।[43]

1.5 तुलनात्मक अध्ययन की उपादेयता

तुलनात्मक अध्ययन साहित्य का एक पकार है। अध्ययन से ज्ञान बढता है और ज्ञान पाप्त करना ही अध्ययन का मुख्य उद्देश्य रहा है। ज्ञान तथ्य और सत्य दोनों के मूल तक ले जाता है। तुलनात्मक अध्ययन का मूल हेतु तुलना करना है और साथ ही ज्ञान का विस्तार करना है। अगजी में तुलना के लिए 'कम्पेयर' शब्द का पयोग किया जाता है। तुलना शब्द 'तुल' धातु से बना है। तुलना अर्थात् बराबरी।अत: तुलना का व्यावहारिक अर्थ है – किन्हीं दो वस्तुओं का या व्यक्तियां का समान गुणों के आधार पर पूर्णतया जानने के लिए जो परोक्षण या तुलना की जाती है, वह तुलनात्मक शोध या तुलनात्मक अध्ययन है।[44]

डॉ. मनोरमा शर्मा तुलना को साध्य की जगह साधन मानती है। वे लिखती है कि "तुलना के लिए तुलना साध्य नहीं साधन है। वह तो साहित्यों, दो विधाओं को जानने का साधन है, जिससे उसकी विशिष्टता उजागर हो सके। साहित्यिक अनुसंधान की अनेक पद्धतियाँ जैसे कि समस्यामूलक पद्धति, आलोचनात्मक पद्धति, वैज्ञानिक पद्धति आदि के समान तुलनात्मक पद्धति भी एक हैं। जो दूसरों से एकदम अलग न होकर दूसरों से भिन्न है।" अपने समर्थन मे उन्होंने मेक्स मूलर का उल्लेख किया है। व कुछ इस तरह से कहते है–"All higher knowledge is gained by comparison and rests on comparison." [45]

तुलनात्मक साहित्य के समग रूप का अन्तर्राष्ट्रीय परिपक्ष्य में अध्ययन करं तो टी.एस. इलियट का कहना है "तुलना और विश्लेषण आलोचना के पमुख औजार है। मूल्यांकन परक आलोचना की श्रेष्ठता को मापने क लिए तुलनात्मक पद्धति का लाभ उठातो है।"[46]

तुलनात्मक साहित्य द्वारा विभिन्न भाषाओं में लिखित साहित्यों अथवा साहित्यिक घटकों की साहित्यिक तुलना होती है।

भारतीय परिपक्ष्य में नगेन्द के अनुसार–"तुलनात्मक साहित्य एक पकार का अन्तर्साहित्य अध्ययन है। जो अनेक भाषाओं को आधार मानकर चलता है। जिसका उद्देश्य अनेकता में एकता का संधान है।"[47]

तुलना सतत पकिया है जो पाचोन काल से चली आ रही है। तुलना ज्ञानपाप्ति का आवश्यक साधन है। भारतीय संदर्भ मं तुलनात्मक अध्ययन बहुत ही महत्त्वपुर्ण है। वर्तमान भारत में मानव समाज में अनेक समुदाय है। विभिन्न भारतीय अनेक संस्कृति समुदाय में विविधता में एकता लाने

हेतु तथा उनके जीवन को समझने के लिए तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। परस्पर संबधो में परिपक्वता लाने और आपस में आदान पदान को बढाने के लिए तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक बना है। इतिहास में बनी गलत धारणाएँ और गलतफेमियों को दूर करने के लिए तथा साम्यता स्थापित करने हेतु, तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है।

आचार्य विजयपाल सिंह ने तुलनात्मक के पयोजनों को इस पकार सूचित किया है।

1. तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा एसी विशेषताएं उजागर होती है, जो सामान्य अध्ययन से सम्भव नहीं है।
2. नए संदर्भ नए रूप में पकट होते है।
3. तुलनात्मक अध्ययन भाषा और साहित्य का गहन संबंध स्थापित करता है।
4. एक ही देश की विविध इकाइयों को परस्पर निकट आने का पोत्साहन मिलता है।
5. तुलनात्मक अध्ययन पूर्वागहों से मुक्ति दिलाता है।[48]
6. पारस्परिक आदान पदान द्वारा भाषाओं और साहित्यों के क्षितिज विस्तत होते है।

हमें विश्वास है कि इस अध्ययन से नए तथ्य उजागर होंगे। एक ही विधा दो भाषाओं में किस पकार विकसित हुई है। साथ ही उसकी पृष्ठभूमि, और लेखन की विकास गाथा का संपूर्ण परिचय मिलेगा। हमने पयत्न किया है कि हिन्दी और मराठी भाषा के दलित साहित्य में जो मतमतांतर है जो आरोप लगाये जाते है वे दूर हो। हर ऐसे साहित्यकार चाहे वह किसी भी विधा का हो या किसी भी भाषा का ही क्यों न हो, उन्हें निश्चित न्याय मिले। सकारत्मक दृष्टि से देखा जाये तो तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी है। इस शोध गंथ में हमने हिन्दी और मराठी दलित कथा साहित्य की तुलना करके नई दिशा देने का पयत्न किया है।

1.6 बिटिश राज तथा स्वाधीनता के उपरांत दलितों को पाप्त विशेष अधिकार

बिटिश राज में भले ही अंगजों का राज हो किन्तु दलितों के लिए धर्म गंथो के आधार पर ही नियम और कानून लागू होते थे। बिटिशो ने दलितों को कुछ अधिकार जरूर दिए थे किन्तु वे औपचारिक हद तक ही सीमित थे। व्यावहारिक जीवन से उनका कोई संबंध नहीं था। डॉ.

श्योराजसिंह बैचेन लिखते हैं स्वतंत्रता पूर्व बिटिश शासकों द्वारा शासन और पशासन के सभी स्तरों पर बिटिश कायदे कानूनों पर अमल कराया जाता था। ज़बकि समाज में मनुस्मृति के आधार पर हिन्दू कानून चलता था। स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान अस्तित्व मं आया। संविधान स्वतंत्रता के अनुरूप तो बना किन्तु समाज और संस्कृति के अनुरूप विकसित नहीं हुआ।[49]

1947 में भारत देश स्वाधीन हुआ। 1955 में संविधान लागू हुआ। संविधान में राजकोय इच्छा अनुसार अधिकार व कर्तव्यों का गठन किया जाता है। अपेक्षा यह की जाती है कि नागरिकों के लिए बनाय गये अधिकारों का उपयोग और कर्तव्यों का पालन करने के लिए वे सदैव तत्पर रहे। संविधान बनने के पहले दलितां के लिए कर्तव्यों के अलावा अधिकार जैसी कोई वस्तु न तो कानून में थी और वही सामाजिक दासता के चकव्यूह में फंसे दलित की कल्पना में। संविधान निर्माण में दलितां के समान अधिकारों के मूल में डॉ. आम्बेडकर की अहम भूमिका रही है। उनके नेतृत्व में अभूतपूर्व पखरता के साथ राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान दलित जीवन के पश्न सामाजिक आंदोलनों के माध्यम से राष्ट्रीय शिखर तक आए। संविधान निर्मात्री सभा में डॉ. आम्बेडकरने आकांक्षाओं के अनुकूल संविधानिक व्यवस्था करने का पयास किया। लेकिन इस कार्य में पूर्णतया सफल नहीं हुए फिर भी उनके नेतृत्वने संविधान को मनुस्मृति का नया संस्करण करने से बचाया।

1942 में संविधान निर्मात्री सभा के अंतर्गत डा. आम्बेडकरने, 'अस्पृश्य और भारतीय संविधान' शीर्षक स संविधान पस्तुत किया जिसे अस्वीकृत कर दिया गया। इसमें दलित मुक्ति विषयक कई योजनाओं का समावेश किया गया था। उदाहरण के रूप में "संविधान के अर्न्तगत आवास आयोग का गठन किया जायेगा। जो जोतरहित जमोन को दलितों के लिये अधिगहण करेगा। इस पयोजन के पक्ष में समय-समय पर कानून भी बनायेगी।"[50]

डा. अम्बेडकर चाहते थे कि अछूतां को वे सारे अधिकार मिले जो मुख्य धारा के लोगों को पाप्त है। इसके लिये वे पयत्नशील थे। किन्तु उनके पयत्न असफल रहे। वे अस्पृश्यां के लिए पृथक आवासीय व्यवस्था चाहते थे। वे सोचते थे कि, जब सामाजिक रूप से अछूतों को अलग रखा जाता है। तो उन्हं भौगोलिक रूप से भी अलग रहने में कोइ हर्ज नहीं है।[51]

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि भारत गांवों का देश है। गामीण अर्थ-व्यवस्था छुआछूत का मार्ग पशस्त करती है। इस मार्ग पर चलते रहने से अव्यवस्था नहीं मिट सकती स्वतंत्रता पाप्ति

निकट पूर्व हम डॉ. आम्बेडकर को सघंर्षपूर्ण भूमिका में पाते है। इस 1950 में संविधान लागू होने के बाद दलित पक्ष के लिए कइ अधिकार लागू हुए।

संविधान के अनुच्छेद 330 के अंतर्गत लोकसभा और अनुच्छेद 332 में एक राज्य विधान सभा के लिए दलितों की जनसंख्या के अनूसार स्थान आरक्षित किए गए हैं। संसद की कुल 543 में 125 स्थान अनुसूचित जाति के सदस्य तथा 54 पद अनुसूचित जनजाति के सदस्यों के लिए आरक्षित किए गए थे।

संविधान के अनुच्छेद 16(4) में पिछडे वर्ग के लोगों के लिए पशासन सेवा में अपर्याप्त पतिनिधित्व के कारण राज्यों को अधिकार है कि वह राज्याधोन निकायों में नियुक्तियों के लिए आरक्षण उपलब्ध करेंगे और अनुच्छेद 46 में दलित वर्ग खास कर अनुसूचित जातियों जनजातियों के शैक्षणिक तथा आर्थिक हितों को बढावा देने हेतु राज्य विशेष सावधानी से काम लेगा तथा सामाजिक न्याय के लिए सभी पकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।[52]

डॉ. श्योराजसिंह बैचेन लिखते है कि, ‘‘संवैधानिक लक्ष्यों कि पाप्ति में असफलता के परिणाम स्वरुप अनुसूचित 330, 332 में सीमित समय के लिए किए गये आरक्षण को 62 वे संविधान संशोधन अधिनियम 1989 के अंतर्गत 20 दिसम्बर 1999 तक भारतीय समूदाय के लिए पतिनिधित्व का पावधान किया गया हालांकि संविधान राज्य के तीनों अंगो (कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका में न्याय की गारन्टी करता है किन्तु सामाजिक वातावरण के सहयोग के बिना संवैधानिक स्थिति किताबी दास्तान बन कर रह जाती है। डॉ. आम्बेडकर को इस बात का पूर्वानुमान था कि राजनैतिक लोकतंत्र तब तक नहीं टीक सकता जब तक उसका आधार लोकतंत्र पर नहीं टीकता।

संविधान के अनुच्छेद 15 क अंतर्गत सार्वजनिक स्थलों, कुओं, तालाबों, स्कुलों, होटलों, रास्तों, पनघटों, या किसी भी शैक्षणिक संस्थाओं में पवेश का अधिकार बिना किसी धर्म, जाति या लिंग भेद के दिया गया है। इतना ही नहीं बल्कि इन अधिकारों से वंचित करने को अवैध व दण्डनीय करार दिया गया है। अनुच्छेद 338 के अंतर्गत पभुत्व संपन्न भारत के राष्ट्रपति को अनुसूचित जाति, जनजाति को रक्षार्थ सुरक्षा गार्ड की व्यवस्था करने का अधिकार भी दिया गया ह। समगता में पंथ निरपेक्षता संसदीय लोकतंत्र राजनैतिक समानता बंधुता और सामाजिक न्याय की संवैधानिक सम्भावनाओं को रेखांकित किया गया है। अनुच्छेद 339 के अंतर्गत राष्ट्रपति को आयोग गठित कर अनुसूचित जाति जनजातियों के कल्याण हेतु सेवा नियुक्तियां कराने की व्यवस्था की।’’[53]

इन संवधानिक अधिकारों के बावजूद दलितों की स्थिति नहीं सुधरी हैं। आज उन्हें समाज में सताया जाता है। वे अब भी अन्याय को सह रहे हैं। अपमान का शिकार हो रहे हैं। हिसार जिल्ले के मिर्चपुर गांव में कुछ दिन पहले दलित और सवर्ण लोगों में झडप हुइ। जिसमें एक बच्ची की जान गई। अभी भी उत्तरपदेश, बिहार और मध्यपदेश आदि के कई इलाका मे दलितों की स्थिति कुछ ठीक नहीं है। भेद-भाव, अपमान, अन्याय और शोषण अब भी जारी है।

इसकी भविष्यवाणी डॉ. आम्बेडकर ने बिटीश काल में ही कर दी थी। नवंबर 1930 से जनवरी 1931 तक हुइ गोलमेज परिषद में उन्होंने कहा था-"बिटीश भारत की कुल जनसंख्या के पांचवं हिस्से के लोगों की हालत गुलामों से भी बदत्तर है। बिटीश लोगों के आने से पहले हम घृणित अवस्था मे थे। क्या बिटीश सरकार ने इस अवस्था से बाहर निकलने के लिए क्या कोइ पयत्न किया ? जवाब ना में मिलेगा।"[54]

स्वाधोनता के बाद भारत के संविधान में समता के अधिकार के अंतगंत अनुच्छेद 17 में कहा गया है कि, "अस्पृश्यता का किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। अस्पृश्यता स उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय है।"[55]

भारत के समता के अधिकार के अंतर्गत अनुच्छेद 15में दलितों के लिए विशेष अधिकार दिए गए है। अनुच्छेद 16 अंतगंत पद और नियुक्तियाँ संबधी समता दी गइ है। केवल धर्म, मूलवंश या जाति के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा, नाही उसके साथ कोइ भेद-भाव किया जायेगा।[56] राजनीति में लाभ मिल सके इस लिए लोकसभा में अनुसूचित जाति के नागरिकों के लिए स्थान आरक्षित किए गए है।[57] संविधान मे ऐसे कइ उपबंध किए गए हैं। जैसे कि अनुसचित जाति और जनजातियों के लिए एक आयोग की रचना की गयी है।

स्वतंत्रता पाप्ति के बाद या इन सभी अधिकारों के उपरांत दलितों के सारे पश्न अनसुलझे रह गए। स्वतंत्रता उपरांत दलितों की रोजो-रोटी की समस्याएँ हल नहीं हुई। बल्कि समस्याए बढी। स्वतंत्रता पर से उनका विश्वास उठने लगा।लोगों ने आंदोलन करना शुरू कर दिया। बाबासाहेब आम्बेडकर के विचारों और कायों से परणा लकर दलित आंदालन को बढावा मिला। बहुत से दलितों ने हिन्दु धर्म को नकारा। इसलिए उनका विरोध भी हुआ।

1.8 नवजागरण के समाज सुधारकों का योगदान

बाह्मणवादी पथा को मिटाने के लिए अंगजो के जमाने में भी कइ पयत्न हुए। बह्म समाज, आर्य समाज, पार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन आदि ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाइ है। समाज में व्याप्त स्त्री शोषण, जाति पथा, धामिक ढोंग, अंधश्रद्धा को दर करने के लिए काफी पयत्न किए गए। राजाराम मोहन राय ने जातिपथा का जमकर विरोध किया। विवेकानंद का मानना था कि यदि तुम्हारा पडौसी भूखा मरता हो तो मन्दिर में भोग चढाना पुण्य नहीं, पाप है।58 उस समय उनके विचारा का पभाव चारा ओर था। दलितों के बारे में वे कहते थे कि निम्न वर्ग के लोगों को मत भलो जो अज्ञानी है और अनपढ है –मोची है मेहतर है –दरिद है वे भी तुम्हारे ही रक्त–मास है। तुम्हारे ही बन्धु हैं।59 समाज में संघर्ष का वातावरण फैला हुआ था। धर्म शिक्षा अर्थ व्यवस्था, राजनीति, शिक्षा संस्थान सभी क्षेत्रों में कुछ बलवान लोग अपना वर्चस्व बनाए हुए थे, और दलितों को अपना शिकार बनाते थे। ऐसे विषम समाज में समता स्थापित करने हेतु इन्हीं के समान ओर भी कइ महापुरुषों न जाति पथा को जड मूल से दूर करने का पयत्न किया। जैसे महात्मा ज्योतिबा फुले, डा. बी.आर.आम्बेडकर, वीर सावरकर, डा. राम मनोहर लोहिया, महात्मा गाँधीजी आदि क योगदान का विश्लेषण करने का हमारा उपकम है।

1 महात्मा ज्योतिबा फुले

दलित साहित्य की भूमिका को आकार देने वाले कई लेखकों, कवियों समोक्षकों एवं संतो का हाथ रहा है। उन्ही में से एक महात्मा ज्योतिबा फुले जिन्होंने दलित साहित्य को नींव को मजबुत बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। व एक चमत्कारी महापुरुष थे। उनका जन्म 1827 में एक माली परिवार में हुआ। उन्होंने कई लेख पकाशित किये। सर्व पथम महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुल ने दलित मुक्ति आंदोलन की नींव डाली। जिसमें भारत सहित विश्व भी पभावित हुआ। अस्पृश्य समझी जाने वाली जाति को शिक्षित किया। समाज को सुधारने की शुरूआत उन्हांने अपने घर से ही की। अपनी पत्नी को उन्होंने पढा–लिखाकर शिक्षिका बनाया। 1848 में स्त्रियों उन्होंनें तथा शुद्रों के लिए पाठशालाएँ खोली ताकि उनके लिए ज्ञान के द्वार खुल सके। इसी कारण र्डा. बाबा साहेब आंबेडकरने उन्हं अपना गुरु माना और उनके द्वारा किये गये कार्यो को आगे बढाया। उन्होने भेदभाव–रहित समाज की रचना के लिए ज़ीवन भर पयत्न किए। वे बाह्मणवादी पथा को मूल से उखाड फैंकना चाहते थे। विद्या के महत्त्व को पतिपादित करने हेतु अपने गंथ शेतक–यांचे आसुड में कहा है कि–

“विद्या विना मति गेली। मति विना नीति गेली।।

नीति विना गति गेली। गति विना वित्त गेले।।

वित्त विना शुद्र खचले। इतके अनर्थ एका अविद्य ने केले।।"

यहाँ पर उनके मुलभूत विचारों के दर्शन होते हैं। वे अज्ञान को अंधकार का तथा ज्ञान को पकाश का पतीक मानते थे। वे संघर्षशील और जाति भेद पर कठोर पहार करने वाले पथम लोकनेता थे। उन्हाने सत्यशोधक समाज को स्थापना की तथा गुलामगीरी नामक पुस्तक की रचना की। महात्मा ज्योतिबा फुले ने गुलामगीरी पर टिप्पणो करते हुए कहा है कि मेरा उद्देश्य मात्र दलित भाइयों की मुक्ति का है। उनके लेखन के पिछे यही उद्देश्य था। उनके मानवता वादी साहित्य में 1: छत्रपति शिवाजी राजे भोसले यांचें पवाडे, 2: अखंडादि काव्य रचना, 3: ब्राह्मणांचे कसब, 4: गुलामगीरी, 5: शेतक-यांचे आसुड, 6: सत्कार अंक 1, 2, 7 सार्वजनिक सत्यधर्म पुस्तक आदि।

'बाह्यमणांचे कसब' में उन्हाने बाह्मणों की पोल खोली है कि किस पकार वे लोगों से पैसा एठत हैं, ठगाइ करते हैं उनकी पोल खोली गइ है। निम्नलिखित पंक्तियों देखिए:

" लग्न वर्तविता दुकान मांडले, गणपति केले सूपारि चे

खारका खोबरे नैवेद्दाचा भार, दक्षिणा रितसर पैसा लूट "[60]

महात्मा ज्योतिबा फुले सत्य के साधक थे, इसी कारण उन्होंने 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। उनका लक्ष्य समता तथा स्वतंत्रता था। सार्वजनिक सत्य धर्म में उन्होंने मानवता और उनके अधिकार तथा सामाजिक मूल्यों की बात कही है। इन्हं "आधुनिक भारत के बुद्ध " कह सकते है। महात्मा फुलेजी ने आधुनिक भारत में अस्पृश्यता निवारण तथा जातीयता नष्ट करने के लिए बहुत पयत्न किये। अस्पृश्यता निवारण के लिए भरसक पयत्न किये हैं। उनके 'सत्य शोधक आंदोलन' से परित होकर कइ लेखकों ने इस दिशा में कार्य किया। वे कहते हैं :

" सत्य सर्वांची आदिघर।। सर्व धर्मांचे माहेर।।

ज़गां माजी सूख सारे।। खास सत्य ची ती पोरे।।

सत्य सूखाला आधार।। बाकि सर्व अंधकार।।

आहे सत्याचा बो जोर।। काढी भंडाचा तो नीट।।"[61]

सत्य को हथियार बना कर उन्होंने जाति भेद के खिलाफ लडाइ लडो। मानव जाति के समानता का पचार-पसार किया। उपलब्ध सभी साधनों द्वारा उन्होंने बाह्मणवाद की नीति को अपनाया उनका मकसद ही यही था कि सामाजिक विषमता को नष्ट करके इश्वर और भक्त के बीच के दलालों

को नष्ट करे तथा सभी के लिए शिक्षा का द्वार खोलें। वे उनके विचार केवल कान्ति लाने के लिए ही नहीं अपितु व्यावहारिक रूप से भी अमल में लाना चाहते थे।

2 डॉ. बी. आर. आम्बेडकर

दलित साहित्य के जनक डॉ. बी. आर. आम्बेडकर का जन्म एक मराठी भाषी परिवार में 14 अपैल 1891 में हुआ था। वे महात्मा ज्योतिबा फुले को अपना गुरु मानते थे उन्हें 1990 में भारत सरकार ने बडे ही गर्व के साथ 'भारत रत्न'से विभूषित किया। भीमराव ने बचपन से ही अपमानजनक व्यवहार को महसुस किया था। बचपन से लेकर जवानी तक उन्होंने ऐसी कई घटनाओं का सामना किया जिससे उनकी आत्मा को ठेस पहुँची। डॉ. बाबा साहेब आम्बेडकर बचपन से हो एक मेधावी और परिश्रमी बालक थे। उन्होंने अपने आप को एक काबिल इन्सान बनाया और अपनी काबिलीयत को दलितों के उद्धार में लगा दिया। उन्होंने अछूतों और गरीबों में आत्मसम्मान का भाव जगाया। उन्हें इन्सान होने का एहसास कराया। उन्हें ज्ञात था कि अपमान जनक परिस्थिति का शिकार केवल वे अकेले नहीं थे, बल्कि अछुत कही जाने वाली जातियों के सभी लोग थे। उन्होंने सबको यह शिक्षा दी कि डरे सहमे रहना, जुल्म और अन्याय सहना अपराध है हमें अपना उद्धार स्वयं करना चाहिए और अपने हक के लिए लडना चाहिए।

एल्फिस्टन हाईस्कूल का माहौल जहाँ भीमराव दाखिल हुए वह स्कूल उनकी पढाई के लिए अनुकूल नहीं था। हालाकि वह सरकारी स्कुल था। परंतु जब भी भीमराव को ब्लेकबोर्ड पर सवाल हल करने के लिये बुलाया जाता था तो बच्चे शोरगुल मचाने लगते थे। क्योंकि ब्लेकबोर्ड के पीछे बच्चों के खाने के डिब्बे रखे रहतें थे और भीमराव के ब्लेकबोर्ड छुने से उनका खाना भष्ट होने का डर था।एक अध्यापक भी हमेशा उनका मज़ाक उडाया करते थे। भीमराव अपमान चुपचाप सहन कर लेते थे। आगे चलकर वे अपने साथ हो रहे अत्याचारों के पति जागृत हुए।वे विषम समाज रचना और बाह्मणवादी विचारधारा के खिलाफ जागृकता लाने के लिए बचपन से ही पयत्नशील थे।

बचपन में जब उनसे यह सवाल पूछा गया कि वह कौनसी चीज़ है, जिसे हम देख तो सकते है किन्तु छू नहों सकते दूसरे बच्चे कहते है कि वह सूरज है। जिसे हम देख तो सकते है किन्तु छु नहीं सकते। लेकिन भीमराव कहते है कि इसका मेरे पास दूसरा उत्तर है। वह यह है कि वह जो घडा सामने रखा है, उसें मैं देख तो सकता हूँ लेकिन छू नहों सकता। दलित साहित्य के जनक डॉ. बी. आर. आम्बेडकर दलित साहित्यकारों के लिए परणा स्त्रोत रहे हैं। डॉ. बाबा साहेब आम्बेडकर दलित

साहित्य के पेरणा स्त्रोत ही नहीं बल्कि जनक माने जाते हैं। दलित साहित्य चुनौतियों से भरे हुए सफर को तय करके जिस आयाम पर पहुँचा है, उस सफर को तय करने में डॉ. आम्बेडकर का बहुत बडा हाथ रहा है। दलित साहित्य मं डॉ. बाबासाहेब का योगदान अभूतपूर्व है। डॉ. बाबा साहेब के पूर्व महात्मा फुले का योगदान भी अविस्मरणीय है किन्तु सबसे जबरदस्त हार का सामना आम्बेडकर को अछूत होने के कारण करना पडा था।

आम्बेडकर ने अधिक मात्रा में दलित साहित्य भले ही न लिखा हो किन्तु उन्हांने कुछ गीनीचुनी पुस्तकें लिखी साथ ही उन्हांने कई पसिद्ध पत्र भी निकाले जिनमें 'बहिष्कृत भारत', 'मूक नायक' और 'जनता' जैसे अखबारों का समावेश होता है। आम्बेडकर एक बहुमुखी पतिभा संपन्न व्यक्ति थे ,जो समाज सुधारक होने के साथ-साथ सच्चे साहित्यकार भी थे। एक साहित्यकार के उद्देश्य को सुधारवादी विचारों और कार्यो से अमर हो गये।

ई.स. 1920 तक समाज में अस्पृश्यता निवारण कार्य को महत्त्व दिया जाने लगा था। समाज में अन्याय और अत्याचारों के विरुद्ध चेतना जगाने के पयत्न निरंतर हो रहे थे। जाति-पाँति और उँच-नीच के भेदभावों का नष्ट करने के लिए कई लडाईया लडो गयी, उनमें दलितों को संपूर्ण न्याय नहों मिल सका। यह डॉ. आम्बेडकर को महेसूस हो रहा था। उन्हं लगा कि सवर्ण जातियाँ दलितां के हित के लिए संगाम का नेतृत्व नहीं कर सकती इसलिए डॉ. आम्बेडकर न इस संगाम को आगे बढाने का बीडा उठाया और दलित मुक्ति आंदोलन का पारंभ किया।

पथमतः बाबा साहेब ने मूकनायक को जगाने के लिए 31 जनवरी 1920 के दिन 'मूकनायक' पाक्षिक की शुरूआत की। 1924 में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा'की स्थापना की।और 20 मार्च 1927 को महाड के 'चवदार तालाब' के सत्यागह द्वारा छुआछूत और अस्पृश्यता के विरुद्ध सत्यागह किया। डॉ. आम्बेडकर ने इस सत्यागह के उद्देश्य पर पकाश डालते हुए कहा है कि, "चवदार तालाब का पानी जब हमनें नहीं पीया था तब भी हम लोग मरे नहीं थे और पानी पी लेने से अमर नहीं हो जायेंगे। हम यहाँ पानी पीने नहीं आये है बल्कि यह सिद्ध करने आये हैं कि हम भी इन्सान हैं।"62

उन्होंने 3 मार्च 1930 में नासिक का पसिद्ध कालाराम मंदिर पवेश सत्यागह शुरू किया। 25 दिसम्बर 1927 में मनुस्मृति दहन करते हुए उन्होंने कहा कि, "हम अंधकार युग में रचे गए शास्त्रों और स्मृतियों के शासन को मानने से इनकार करते हैं।"63 उन्होंने 3 मार्च 1930 में नासिक का पसिद्ध कालाराम मंदिर पवेश सत्यागह शुरू किया। 13 अक्तुबर 1935 में ऐवलेकर के यहाँ धर्मांतरण की

घोषणा करते समय उन्होंने कहा कि "जिस पकार भारत के लिए स्वराज्य अनिवार्य है, उसी पकार दलितों के लिए अब धर्म परिवर्तन भी आनिवार्य है।दोनों के पीछे एक ही उद्येश्य है–मुक्ति की कामना"[64] डॉ. आम्बेडकरजी ने बौद्धधर्म को स्वोकार करके बौद्धधर्म के तीन तत्त्व स्वतंत्रता, समता, तथा बंधुत्व का सुत्र दिया। वे कहते थे कि गुलामों को गुलामी का एहसास करा दो वे खुद गुलामी की जंजीरे तोड देंगे।

आज मोटे तौर पर जो दलित साहित्य का निर्माण हो रहा है। हमें लगता है, बाबासाहेब डॉ. भीमराव आम्बेडकर की वैचारिक कान्ति का निरूपण है। दलित साहित्य की किसी भी विधा में उनके विचारों को हम देख सकते हैं।

3 महात्मा गाँधी जी का योगदान

अस्पृश्यता को कलंक मानने वाले राजनेता, समाजसुधारक और हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने अपना समग जीवन समाजसुधारक और लोगों के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया। उनका राजनैतिक ही नहीं सामाजिक दृष्टिसे भी बहुत महत्त्व है। गांधीजी के चिंतन और विचारधारा को देख सकते हैं। गाँधी जी ने अपने देश की दरिद्रता और दलितों की पिडा को करीब से देखा सुना और जाना था। उनके अनुसार दलित केवल वे लोग नहीं थे जो निम्न जाति के लोग ही नहीं बल्कि वह हर हिन्दु था जो गरीब था।

दलितों की व्यथा उन्हें अगंजों द्वारा सताए गए हर व्यक्ति में दिखाइ पडी चाहे वह जमोनदार हो या चम्पारण के किसान, अंगजों के हुकूम के इक्के, दलित की हाय कराह उन्हं हरेक फटेहाल, भूख से बेहाल बेरोजगार आदमी में सुनाइ पडी। दलित की पीडा को उस हरेक भारतीय में उन्हांने देखी जिसकी 1930 तक औसत दैनिक आय दो आने से भी कम थी।[65]

गाँधीजी को अछूतों के पति गहरी सहानुभूति थी। उनके मन में कोइ भेदभाव न था। वे अपने घर मं मलमूत्र साफ करने का कार्य स्वयं किया करते थे। उन्हांने अपनी आत्मकथा मे कइ एसी बातें बतायी हैं, जिससे उनका दलितों के पति बंधुत्व–भाव स्पष्ट होता है। दिनांक 18दिसम्बर 1920 के यंग इंडिया मं छपे उनके लेख मे वे कहते हैं – "मैं हिन्दू समाज को चार वर्णो में विभक्त होने की बात की हिमायत करने के लिए तो सदा की भाँती आज भी तैयार हूँ और यंग इंडिया में मैंने हमेशा यह बात कही है। लेकिन मै अस्पृश्यता को मानवता का जघन्य अपराध मानता हुं। वह संयम का नही बल्कि उंचेपन का द्योतक है। हिन्दुत्व की किसी अन्य चीज़ ने मानव जाति के विशाल समुदाय

का इतना दमन नहीं किया जितना इस अस्पृश्यता ने किया है। दलित समुदाय के लोग न केवल हर अर्थ में हमारे जितने अच्छे है बल्कि वे देश के कइ क्षेत्र में सेवा भी कर रहे हैं।"66

गांधीजी दलितों को हरिजन कहकर पुकारते थे। 'गाँधीजी हरिजन क्यों?' इस लेख में वे कहते हैं कि, "जिनको हम अछूत मानकर पाप करते हैं उनको मैं हरिजन क्यों कहता हूं? एसा पश्न कइ सज्जनों ने मुझसे पूछा हैं।" वे उत्तर में कहते हैं कि, "हरिजन का अर्थ है इश्वर का भक्त इश्वर का प्यारा इश्वर की पतिज्ञा है कि इश्वर का वह बेली है, दया का सागर है। अशक्तों की शक्ति है, निर्बलों का बल है, पंगु का पैर है अंधों की आँख है इसलिए दलित लोग उसके प्यारे होने ही चाहिए इस दृष्टि से हरिजन शब्द अछूत भाइयों के लिए सर्वथा उपयुक्त है एसा मेरा विश्वास है।"67

गाँधीजी के दिए गए हरिजन शब्द को लेकर हमारे संसद में बहुत बडा हंगामा हुआ। और अब हरिजन शब्द को असंसदीय करार दिया गया है।

गाँधीजी के विचार और वक्तव्य अम्बेडकर जितन भले ही चोटदार और असरकारक न हो फिर भी गाँधीजी का जो दृष्टिकोण रहा है, उनके भाषणों के माध्यम से अछूतों के पति उनका लगाव पकट होता है। 1931 में पकाशित एक लेख में वे कहते हैं कि – "जाति व्यवस्था तरक्की में रोडे डालनेवाली बडी गन्दी चीज़ है। जो फैंक देने के लायक ही है। आदमी–आदमी में उँच–नीच या विषमता है यह मैं कतई नहीं मानता। हम सब लोग समान है। समानता आत्मा की है शरीर की नहीं। वह मानसिक अवस्था है। हमें हमेशा समता का विचार करना चाहिए तथा वैसा ही आचरण करना चाहिए। आज दूनिया में विषमता के बीच रहते हुए हमें समता स्थापित करनी होगी। एक आदमी को दूसरे से उँचे मानना इश्वर तथा मानवता के खिलाफ पाप करना है। हैसियत तथा औकात मं असमानता दर्शानेवाली जाति एक दुष्ट पवृत्ति है।"68

गाँधीजी के अनुसार कोइ भी छोटा या बडा नहीं होता। जो बात उनके विचारों में थी, वही बात वे अपने आचरण में लाना चाहते थे। गाँधीजी दक्षिण आफोका से भारत आने के बाद छुआ–छूत जैसी अमानूषिक पथा को देखते उन्हं महसूस हो गया कि सच्चे स्वराज्य स्थापना अस्पृश्यता जैसे कोढ के रहते नहीं स्थापित हो सकती। इसलिए वे असहयोग आंदोलन के दिनों से लेकर जीवन के अंतिम दिनों तक राजनैतिक स्वतंत्रता, सांपदायिक सौहार्द, राष्ट्रभाषा के पचार के साथ–साथ अस्पृश्यता निवारण तथा अछूतोद्धार के लिए जी जान से पयासरत एवं संघर्षरत रहे।

गाँधीजी हरिजन क्यों? लेख जो हरिजन सेवक के पथम अंक (23-02-1933) में छपा था। उस में वे लिखते हैं कि “अछूतपन जैसा हम आज मानते हैं, न पूर्व कर्म का फल हैं, न ईश्वरकृत है कर्म का फल आधुनिक अछूतपन मनुष्यकृत हैं सवर्ण हिन्दूकृत है कर्म का फल सब भोगते है लेकिन ऐसा कहकर हम को और किसी को दुषित बताने का कोई अधिकार नहीं हैं। हम चार करोड हिन्दुओं को अस्पृश्य मानने लगे इस कारण उनको असह्य कष्ट भोगना पडता है। अपने पास में पैसे होते हुए भी उन लोगा को न तो खाने का, न पीने का, न रहने का ठिकाना मिल सकता है। जैसा दूसरा को उनके लिए न मंदिर है, न धर्मशाला है, न औषधालय है, न पाठशाला है जैसे दूसरा के लिए है उनको हमने ऐसे गिराया है जिससे वे अपने मनुष्यपन को भी पाय: भूल चुके हैं। एसे दलित लोग यदि ईश्वर को पिय नहीं है तो जगत नास्तिक बन जाये। सीधी बात यह है कि ईश्वर है वहां करुणा का भंडार है, दुखियों का दु:ख हरता है। भूखों का उदर भरता है। इसलिए जो सबसे अधिक दु:ख में पडे लोग है। उन्हें हरिजन कहना यथार्थ है। मुझे विश्वास है कि यदि हम हरिजनों की अस्पृश्यता दूर नहों करेंगे तो उनकी हाय से हिन्दू जाति का नाश हो जायेगा।”[69]

बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में महात्मा गाँधी, डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर के मार्क्सवादी विचारों का पभाव साहित्यकार एवं समाज पर भी होने लगा। राजकीय और औद्योगिकरण के कारण जोरों से परिवर्तन हो रहा था। इसका असर मराठी साहित्य पर होने लगा। गाँधीवादी विचार से देश में राजकीय बदलाव दिखने लगे। साथ-साथ अम्बेडकरवाद के परिणाम स्वरूप दलित दीन, हीन और पिछडी जाति के लोक जीवन को भी महत्त्व मिलने लगा। मार्क्सवाद ने कार्मिक और मजदूरों में नई आशाएं जगाई। समाज का ध्यान दलितों की ओर आकर्षित करने का पयत्न गाँधी जी ने किया है।

4 स्वातंत्र्यवीर सावरकर का योगदान

स्वातंत्र्यवीर श्री विनायक दामोदर सावरकर को हम एक सामाजिक कान्तिकारी के रूप में जानते है। महान सावरकर जी का जन्म महाराष्ट्र के नाशिक जिले के भंगुर गांव के एक बाह्मण परिवार में हुआ था। फिर भी उन्हं अपने बाह्मण होने पर काइ गर्व नहीं था। उन्हें दलितों से ह्यदयपूर्वक सहानुभूति थी। वे दलित उद्धार के लिए सदैव तत्पर रहते थे। उन्हाने जातिवाद पर विरोध जताया। अस्पृश्यता को मुँह तोड जवाब दिया।

सावरकर शब्द साहस, शोर्य, पराकम और राष्ट्रभक्ति का पर्याय है। क्रान्तिकारी इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित है। स्वातंत्र्यवीर सावरकर का समुचाय व्यक्तित्व अपतिम गुणों से संपन्न था। मातभूमि की स्वतंत्रता के लिए पाण हथली पर रखकर जुझने वाले महान कान्तिकारी जातिभेद, अस्पृश्यता व अंधश्रद्धा जैसी सामाजिक बुराइयों को समूल नष्ट करने का आगह करनेवाले महानदृष्टा, गीता क कर्मयोग सिद्धान्त को अपने जीवन में आचरित करने वाले वीर सावरकर स्वतंत्रता संगाम एवं समाज सुधार जैसे क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण कार्य करने वाले उच्च कोटि के साहित्यकार भी हो यह अपवाद रूप है। इस अपवाद के पमाण पत्यक्ष वीर सावरकर हैं।71

दिनांक 29 अपल 1931 को रत्नागीरो जिले के विशाल परिषद में सावरकरजी अध्यक्ष थे। उन्होंने अपने भाषण द्वारा अस्पृश्यों में नइ चेतना जगाने का कार्य किया। उन्होनें कहा कि महार भाइयों यदि आपका अपमान हुआ है तो इस कारण नहीं कि आप आदमी हो यह अन्य लोग भूल गए हैं किन्तु आप स्वयं भुल गए हो। इस कारण आपका अपमान हुआ है। आप के हिन्दुत्व तथा मानवता के अधिकार को छीनकर लेना स्वीकारे, सडक पर यदि आप से कोइ कहें कि नीच दूर हो जा तेरी छाया मुझ पर पडेगी तो एसा कहते ही उसे तत्काल उत्तर दे कि सडक किसी के बाप की नहीं है। चाहिये तो तू दूर हो जा, हिन्दुसभा की ओर से हम पाठशाला में संग-संग बैंठने के लिए पयास कर रहे हैं आप लोगों के घर पर बुलाने जाने के बाद भी आप लोग बच्चों को नहीं भेजते। पैसा दो तो भेजेंगे यह कहते हैं। आपको निलंज्जता छोडनी होगी। अस्पृश्यता दूर करनी है, तो आपको स्पृश्यों की स्पर्धा में शामिल होना पडेगा। बच्चा चाहिए तो स्वयं को पसव वेदना सहनी पडेगी। जब हम आपके लिए लड रहे हैं तो हमें साथ देने का काम भी आप नहीं कर रहे हैं। बाह्मण मराठा आपके साथ खाते नहीं, रोटी बेटी का व्यवहार नहीं करते। जब आपके वे नेता स्पृश्यां को गालियां देते रहते हं तब यह भी तो न भूले कि जब तक आप महार स्वयं रोटी बेटी का व्यवहार नहीं करते, तब तक किस मुहं से बाह्मण क्षत्रियों को गालियाँ देते रहते हैं? तो आपको स्वयं को सुधारना होगा। दूसरा जो आपका स्पृश्य बंधु है वह तो दोषी है ही,आप भी उतने ही दोषी हो। पर आप अपने दोष जांति-पांति तोडकर स्वयं लड झगड कर, पढ लिख कर ही दूर कर सकते हो। केवल स्पृश्य आपको छूने लगे तो क्या होगा? वे तो कुत्ते को भी छुते है पर उनके छुने से कुत्ता सिंह नहीं बन जाता, सिंह अपने गुणो से सिंह बनता है।72

ऊपर्युक्त भाषण में हमें वीर सावरकर का दुरंदेशी दृष्टिकोण नजर आता है। अस्पृश्यों से वे गहरा लगाव रखते थे। जितनी चाहत एक दलित को अपने आप को मुक्त कराने की होती है, उतनी ही चाहत उनमें दलितों को मुक्त कराने की थी। इसलिए सावरकर सोचते थे कि गेंहू के लिए छुआछूत नहीं, उन्हें चुनने में कोई आपत्ति नहीं, परन्तु आटे के छुने के लिए छुआछूत है, नदी के लिए छुआछूत नहीं कुए के लिए छुआछूत है, कुए मे पडे मेढक–मछली तथा घंटी यंत्र पर बैठकर उड जाने वाले कौवे के लिए छुआछूत नहीं, मनुष्य के लिए है। यह कैसा अन्याय है? सभी जाति के भेदभाव भुलाकर समाज को एक नए सिरे से संघठित करना सावरकरजी का उद्देश्य था।

5 राम मनोहर लोहिया

डॉ. राममनोहर लोहिया का जन्म 23 मार्च 1910 में उत्तर पदेश के फैज़ाबाद स्थित के अकबरपुर गाँव में हुआ था। डॉ. लोहिया एक कुशल राजनीतिज्ञ और सच्चे समाज सुधारक थे। उन्हांने आजीवन समाज में समता और सम्पन्नता स्थापित करने का पयत्न किया। आम्बेडकर के समान वे भी चाहते थे कि समाज में समता लाने के लिए शिक्षा का स्तर ऊपर लाना जरूरी है। डॉ. अमर ज्योतिसिंह के अनुसार समानता के समर्थक के रूप में डॉ. राममनोहर लोहिया का नाम निसंदेह लिया जा सकता है। उनका मानना था कि जाति पथा और जन्म पर आधारित जाति कम ही इस राष्ट्र के पतन के सबसे बडे कारण रहे हैं। इस कारण ही विदेशी शासन और बाहरी आकमण द्वारा इसकी परतंत्रता रही। इन्होंने जाति तोडो आंदोलन शुरू किया। उन्होंने कहा कि एक परंपरागत समाज में समानता नहीं पाई जा सकती। उन्होंने कहा मात्र सबको समान अवसर दे कर ही लम्बे समय तक हरिजनां पीछडे तबक्को, महिलाओं और अल्पसंख्यकां में मंद बुद्धिओं को विशेष अवसर दे कर उन्नत लोगों के स्तर तक लाना होगा।[73] उनका स्पष्ट मानना था कि सिर्फ भौतिक समता के स्थापन से वास्तविक समता नही आ सकती। इसके लिए मानवीय अस्मिता को भी सब में समान बाँटना चाहिए। वैयमनस्य दूर करने के लिए समाज ही नहीं बदलना था, शासन पद्धति ही नही बदलनी थी, पहले अपने मन को बदलना था।[74]

लोहिया गाँधीजी से काफी पभावित थे। डॉ. राममनोहर लोहिया के इन्हीं विचारों से उत्तर पदेश के हिन्दी दलित साहित्यकारों को परणा मिली। डॉ. अमर ज्योतिसिंह के शब्दों में जातिपथा तोडने का आंदोलन और रामायण मेले का आयोजन लोहिया द्वारा भारतीय समाज में दो पकार के दृष्टिकोण समाप्त करने का पयत्न करता है। सिद्धांत पक्ष का लोहिया का इतना धनी व्यक्तित्व अपने

युग का पतिनिधित्व ही नहीं कर रहा था। अपने युग से आगे आने वाले युग को भी झरोखे से देख रहा था।[75] लोहिया मन वचन और कर्म से समाज में एकरूपता स्थापित कर जातिपथा को जडमूल से नष्ट करना चाहते थे, पीछडे वर्गो को मुख्य धारा में लाना चाहते थे और वे इसके लिए जी जान से पयत्नशील थे। डॉ. लोहिया देश में सामाजिक, आर्थिक, धामिक और राजनैतिक एकता के पक्षपाति थे, उनका मानना था कि, "जब इन्सान को जिन्दगी देने का तरीका नहीं मालूम तो किसी की जान लेने का हक भी नहीं होना चाहिए।"[76]

6 रामास्वामी पेरियार का योगदान

पेरियार का जन्म तामिलनाडु के इरोद नगर में 1879, 17 नवम्बर को हुआ था। महात्मा फुले और आम्बेडकर की तरह पेरियार ने भी समाज के दूषणों को दूर करने के पर्याप्त पयत्न किए हैं। उनका व्यक्तित्व बहु आयामी था। तामिलनाडु के मदास के नायक है, जिन्होनें नवजागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाइं। "आत्म सन्मान आंदोलन" के जनक होने के कारण उन्हं दक्षिण पूर्व एशिया के सुकरात भी कहा जाता है। साथ ही रामास्वामो पेरियार नायकर को दक्षिण का भाग्यविधाता भी कहा जाता है।[77]

आम्बेडकर की तरह उन्होंने भी 1925में आत्म सन्मान आंदोलन को चलाया, जो अगले 40-45 वर्षो तक लगातार चलता रहा। उन्होंने स्त्री-शिक्षा तथा सामाजिक और आर्थिक सुधार के लिए पयास किए। किसान मज़दूरों के हक्कों के लिए कई लडाइयाँ लडो। उन्होंने रेल, डाक, बैंक एवं जहाज परिवहन के राष्ट्रीयकरण, देशी रियासतों के एकीकरण राष्ट्रीय एवं व्यक्तिगत ऋणों की समाप्ति पर जोर दिया। केरल में लम्बे संघर्ष के बाद वैकुम मन्दिर का मार्ग अछूतों के लिए खोल दिया। इस कारण उन्हें वैकुम वीर भी कहा गया।

पेरियार जी ने अनेक देशों का दौरा किया। उन्होंने विभिन्न भागों की यात्रा करके अनेक सम्मेलनों में भाग लिया। अपनी विश्व व्यापि दृष्टि से पूरी दुनिया को देखा। पेरियार अपने आप में एक संस्था थे। उनका मिशन समाज, देश, विश्व में शांति स्थापित करना था। पेरियार दलित पिछडी जाति और उनकी समस्याओं के लिए आजीवन लडते रहे पेरियार जी ने न केवल रंगुन के बौद्ध सन्मेलन में सपत्निक भाग लिया अपित् अपने शहर इरोदनगर में भी अंतराष्ट्रीय सम्मेलन करवाया। बाबासाहेब ने तो बौद्ध धर्म धारण ही कर लिया था, किन्तु पेरियार से जब धर्मान्तरण के लिए पुछा

गया तो उन्होंने साफ इन्कार कर दिया और कहा कि, हिन्दू धर्म में रहते हुए ही वे उसकी विसंगतियों को दूर करना चाहते है।[78] पेरियार ने हिन्दू समाज में रहते हुए ही समाज की सेवा की तथा जनता को आत्म सन्मान से जीना सिखाया।

उस समय समाज सुधारकों में बह्मसमाज, दयानंद सरस्वती का आर्य समाज, गोविंद रानडे का पार्थना समाज, गोपालकृष्ण गोखले, विपिन पाल, इश्वरचंद्र विध्यासागर का नाम लिया जा सकता है। तत्कालीन समय में दलितों से जुडी समस्याओं के साथ साथ समाज में अन्य समस्याएँ भी पवर्तमान थी। जो इन समाज सुधारकों के केंद्र में थी और दलित मुक्ति का बिन्दू गौण था। राजाराम मोहनराय भी समाज में सुधार लाना चाहते थे। उनका मुख्य हेतु सती पथा को समाप्त करना था। विधवा विवाह का उन्हांने समर्थन किया। दयानंद सरस्वती वेदों के समर्थक थे। वे हिन्दू धर्म की रक्षा वेदों द्वारा करना चाहते थे। उस समय केवल स्वामो विवेकानंद थे जिन्हानें भारत में जाति पथा का भी विरोध साहस और शक्ति के साथ किया। नवजागरण काल में इन समाज सुधारकों ने समाज और संस्कृति के भेद मिटाने के पर्याप्त पयत्न किये। दलित आन्दोलन को आगे बढाने का श्रेय सही अर्थो में इन्हीं महापुरुषों को जाता है। इन्होंने यथार्थ और सच्चाई को सामने लाकर छुआछूत की समस्या को जड से उखाड फेंकने का पयत्न किया। बाबासाहेब डॉ.आम्बेडकर दलितों के मसोहा कहलाए। महात्मा फुले ने बालिकाओं के लिए पहला स्कूल खोलकर सामाजिक कान्ति के जनक कहलाए। सामाजिक विसंगतियों को चनौतो देने वाले पेरियार को नव यग का पैगम्बर कहा जाता है। गाँधीजी ने भी दलित उत्थान के लिए काफी पयत्न किये।गाँधीजी की इसी दलित–चेतना से पभावित होकर हिन्दी साहित्य में पमचन्द और निराला आदि ने दलितों के हक में बहुत कुछ लिखा है।

1.10 दलित जातियों का वर्गीकरण

वर्ण और जाति हिन्दू के समाज के मुलभूत अंग है। अति पाचीन काल में इस समाज में कोइ वर्गीकरण नहीं था। दलित जातियों के विभिन्न समय तथा काल में अनेक पकार के नामों से सम्बोधित किया गया है। इनका नामकरण अनेक रूपों में किया जाता है। दलितों के लिए अंत्यज, शुद्र, अछूत, बाहरी जातियाँ हरिजन और अनुसूचित जातियाँ आदि अनेक शब्दों का पयोग किया गया है। कालांतर म इन असम्मान सूचक शब्दों के स्थान पर इनके लिए दलित वर्ग (Dipressed Classed) शब्द का पयोग होने लगा। महाराष्ट्र में सामाजिक धरातल के निम्नों के लिए अनेक शब्दों का पयोग काफी

समय से हो रहा है। हिन्दी में भी इन वर्गो के लिए यही शब्द पचलित है। दलित का अर्थ होता है जिसे दबाया गया हो या जिसे अधिकारों से वंचित रखा गया हो, यह शब्द स्वयं परंपरागत हिन्द् समाज व्यवस्था का अस्वोकार करता है और उस व्यवस्था के अंतर्गत उत्पीडित वर्ग की दशा को व्यंजित करता है। अत: हमने अपने शोध पबंध में इसी शब्द का स्थान उचित समझा है। हमने आदिम जातियों और जनजातियों को शामिल किया हैं। जिन्हें हिन्दू समाज व्यवस्था के अंतर्गत निम्न स्तर पदान किया गया है। दलितों में अनेक जातियाँ और जनजातियाँ समाविष्ट है, किन्तु उनके दलित होने के आधार पृथक पृथक है। उन आधारों की दृष्टि से दलित जातियाँ का वर्गीकरण इस पकार किया जा सकता है।

अत्यंज व अछूत वर्ग में वे जातियाँ सम्मिलित हैं जिनके स्पर्श को अपवित्र माना जाता था और इसलिए उनके स्पर्श के पश्चात् स्नान करना आवश्यक माना जाता था इनमें वे जातियाँ सम्मिलित है जो मलमूत्र साफ करने का कार्य करती है। जैसे भंगी, धानुक, चांडाल आदि मृत जानवरों की खाल उतारने का काम करनेवाली जातियाँ हैं। उन्हें अस्पृश्य माना जाता था।

कार्मिक या शिल्पकार वर्ग में वे सभी जातियाँ समाहित हो जाती हैं। जिनकी आय का सोत साधन सम्पन्न उच्च वगा की सेवा या उनकी आवश्यकता की वस्तुए बनाना (हस्तशिल्प) या मनारंजन करना था। सेवा करनेवाली जातियों में धोबी, नाई, आदि हस्तशिल्पियों में चमार, कुम्भार, गांछा, कोली आदि तथा मनोरंजन करनेवाली जातियों में ढोली, डुम, भांड, बेडीया, काल बेलीया, ढाडी आदि पमुख है।

अपराधजीवी या जरायम पेशा वग म वे जातियाँ सम्मिलित हैं, जिनके जीवन में अपराध वृत्ति यायावारी सदियों से जुड गइ है। पुलिस विभाग इन्हें सदिया से शंका की दृष्टि से देखता है। कंजर सासी, मोम्या, वावरी आदि जातियाँ अपराधवृत्ति के लिए कुख्यात है। नट और कुचबंध भी इसी कोटि में गिने जाते है। परंतु वे इतने कुख्यात नहों हैं।

आदिम जनजातिया को भी दलित वर्ग में रखा जा सकता है। विश्व में जन जातियों के वितरण की दृष्टि से भारतीय जन जातियों को विकास की विभिन्न अवस्थाओं में रखा जा सकता है। अभी भी यह लोग सभ्य समाज की तुलना में अत्याधिक पिछडे हुए हैं। नृवंश शास्त्रियों ने जन जातियों को अलग अलग नामों से संबोधित किया है। पसिद्ध समाजशास्त्रो डा. घुरये ने उन्हं तथा कथित आदिवासी, सो कोल्ड एबोरिजन्स अथवा पिछडे हुए हिन्द नाम दिया है। तथा उन्हाने इसके लिए

अनुसूचित जनजातियां शेडयुल्ड ट्राइब्स नाम पस्तावित किया है। भारतोय संविधान के 342 के अर्न्तगत उन्हं यही संज्ञा दी गयी है। भारतीय संविधान 550 में विभिन्न जन जातियों को अनुसूचित जन जाति घोषित किया गया है।79

आम तौर पर पत्येक जन जाति एक निश्चित भ-भाग पर निवास करती है। जन जातियों को देश के उन पाचोनतम निवासियों मे माना जाता है, जो बाहरी आकमण से बचने के लिए अगम्य पदेशो में शरण लेने के लिए बाध्य हुए थे।80

आदिम जातियाँ या 'ट्राइब' शब्द की परिभाषा देश और काल के अनुसार बदलती रहती है। साधारणतया यह माना जाता है कि किसी भी आदिम की अपनी विशिष्ट भाषा समाज व्यवस्था, संस्कृति आदि होती है। पत्येक आदिम जाति एक निश्चित क्षेत्र में निवास करती है। किसी एक ही पूर्वज की सन्तान के रूप में आदिम जाति के सभी सदस्य अपने को परस्पर सम्बन्धित मानते हैं। अतीत के साथ जुडी उनकी जीवन-दृष्टि उन्हें अन्य समाजों से सर्वथा पृथक कर देती है।81

उनके लिए 'वनजाति' शब्द या 'वनवासी' शब्द भो पयुक्त किए गए हैं। जो इसलिए अनपयुक्त है कि वे आदिवासी वनों में नहीं रहते।82

इतिहास में भारत वर्ष की सभ्यता और संस्कृति विश्व की पाचोनतम संस्कृतियों में से एक है। आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व भी इस देश में सभ्यता और संस्कृति का विकास हो चुका था। जब हम वर्तमान जाति व्यवस्था और दलित वर्ग के इतिहास पर नजर डालना चाहेंगे तो निश्चत रूप से हमें पिछले पाँच हजार वर्षो का लेखाजोखा देखना होगा। आर्य-अनार्य, असुर, गन्धर्व दैत्य दानव आदि जातियों की संस्कृति से लेकर वर्तमान रूढ जाति व्यवस्था की सामाजिक यात्रा का आकलन करना होगा।

इस देश में जाति व्यवस्था कोइ नइ बात नहीं है। रमणिका गुप्ता के अनुसार यह अपने मुल स्वरूप में उतनी दुषित नहीं है, जितनी आज है। कारण यह है कि उस समय पारम्भ में इसके विभाजन का आधार खिसकता गया और जन्म नहीं कर्म था। धीर-धीरे कर्म का आधार खिसकता गया और जन्म का आधार ही सामाजिक विषमता का कारण बन गया। मनुष्य-मनुष्य से द्र होता चला गया। ऊँच-नीच भावना को फैलाने वाला बना और अस्पृश्यता छुआ-छूत का हेतु बना। वह मनुष्य से जाति बना। एसी जाति जो मनुष्यता के लिए कलंक बन गया। जातिव्यवस्था का अस्वोकार करना

चाहिए। यह बात बार–बार दोहराई जातो है। फिर भी कइ सारी जातिया है, जो एक साथ खडी नहीं हो सकती।83

इस आकलन हेतु हमें, वैदिक काल से आरम्भ करना होगा। वैदिक काल में डा. रामपसाद मिश्र के अनुसार पहले कोइ राजा या राज्य न था सब समान थे। सब मिलझुल कर कर्तव्य का निर्धारण करते थे। किन्तु तब जन संख्या बेहद कम थी। सारी पृथ्वी, अपने कंद, मूल, फल, जल और पशु पक्षियों से अपूर्ण रूप में जोविका व्यतित न होने देती थी। जैसे जैसे संख्या बढती गइ, शक्ति का पयोग एवं दूरूपयोग होने लगा। लोगों को एक व्यवस्था की अपरिहार्य आवश्यकता अनुभूत होने लगी। राजा का चयन हुआ। उसके दायित्व निश्चित किये गए। इससे विकास को बल मिला। वर्णाश्रम इसी व्यवस्था का अंग है।84

वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था थी, चार वर्ण थे। बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद। कतिपय विद्वानों के मतानुसार शुद वर्ण सेवा कर्मी और साधनहीन होने के कारण अथववेद की रचना के समय निम्न वर्ग में गिना जाने लगा। र्डा. आम्बेडकर इस मत से सहमत नहीं है।

शूद आर्य थे या आर्येत्तर ? इस पश्न पर विद्वज्जन एक मत नहीं है। समाज को एक पुरुष रूप में मानकर वैदिक ऋषि ने बाह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शद का स्थान इस पकार व्यक्त किया है।

ऋग्वेद के पुरुष सुक्त (10/90/-12) के अनुसार

"बाह्मणोऽस्य मुखमसीद् बाहु राजन्यः कृतः
ऊरू तदस्य यद वैश्य पदोभ्याम् शूदो अजायत।। "85

अर्थात् समाजरूपी पुरूष के लिए बाह्मण मुख रूप से, क्षत्रिय बाहुरूप से, वैश्य अरू (जांघ) रूप से, और शुद्र पद रूप से विकसित हुए हैं। इस सूक्त में समाज के लिए चार वर्गो का एक मत होकर कर्तव्य का पालन करना आवश्यक बताया गया है। यही समाज का आदर्श रूप भारत के परिवर्तित विचारकों के समक्ष भी रहा है। रामायण में सम्मान हेतु ऋषि श्रृंग ने भी यही कहा है कि, "गति या उन्नति के सम्मान हेतु मुख या बाहु या उदर या उर नहीं अपितु चरण छुए जाते हैं।"86

तीन उच्चवर्गो की सेवा करन वाले सामाजिक वर्ग के रूप में शुद्रों का पृथक और एक मात्र उल्लेख ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में आया है। जिसकी पुनरावृत्ति अथववेद के उन्नीसव भाग में हुइ है। ऋग्वेद कालोन समाज में कुछ दास–दासियाँ होती थी जो घरेलु नोकर के रूप म कार्य करती थी। उनकी संख्या इतनी नहीं थी कि उनको मिलाकर शुद्रों का दास वर्ग बन पाता। 87

डॉ. आम्बेडकर का मानना यही है कि बाह्मणों और क्षत्रियों के पारस्परिक संघर्ष में जो वर्ग आसक्त हो गया वह शुद्रों में परिगणित हो गया।88

ॠग्वेद के पुरुष सूक्त में शूद्र वर्ण का पेरों से विकसित वर्णित करने मात्र से यह अर्थ नहों निकलता। शूद्र, बाह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण से निम्न स्थिति में परिगणित होते थे। शरीर में पाँवों का महत्त्व किसो भी सिर बाहु या जाँघो से कम नहों है। मात्र पैरों से विकसित होने से यह अर्थ नहों निकलता कि शद्र निम्न वर्ग मे समाविष्ट है।

विद्वानों के विभिन्न मतों के आधार पर तर्क संगत निष्कर्ष पर पहुँचे तो यही सत्य के अधिक निकट प्रतोत होता है कि आया के आंतरिक व बाहय संघर्ष में जो व्यक्ति साधन हीन होते चले गए, वे सभी वर्ण शद्र में सम्मिलित होते चले गए।

वैदिक काल में चार वर्गो में समाज व्यवस्था विभक्त थी किन्तु कार्यो की विभिन्नता के कारण उनके कर्मानुसार पृथक नाम करण हुए। ॠग्वेद में बटता (नाई), त्वष्टा (बढई), बढइ, भिषक (वैद्य), कर्मरि (लोहार), चर्मन (चमार)आदि शब्द आए है। यज्ञ में 16 पुरोहित 16 कार्यो में नियोजित थे। इस पकार कालान्तर म कार्य के अनुसार उपजातियों का विकास हुआ।

1.9 दलित जातियाँ पर थोपी गइ निर्योग्यताएँ

आज जो दलित साहित्य हमें उपलब्ध होता है उसमें दलितों के पति जो अन्याय, अत्याचार या भेदभाव पाया जाता है उसके मूल में भारतीय समाज व्यवस्था कारणभूत है। जो परंपराएं चल रही है, उसके मूल में धार्मिक गथ हैं। दलित जातियों पर शास्त्र संमत कुछ निर्योग्यताएं हमें उपलब्ध होती है। उसे समझे बिना दलित साहित्य का अध्ययन अधूरा माना जाएगा। अतः एसी निर्योग्यताएँ उन पर लागू की गयी थी उसे यहाँ देखा जा सकता है।

भारतीय समाज मे अनेक धर्म जाति और संपदाय के लोग रहते हैं। हिन्दू धर्म चार वर्णो मे बंटा हुआ है। वर्ण व्यवस्था के अनुसार उनकी योग्यताएँ और निर्योग्यताएँ तय को गई है। यदि किसी वर्ग को कोई कार्य करने के या किसी अधिकार को भोगने योग्य नहीं समझा जाता तो वह उसकी निर्योग्यता है। यह नियाग्यताएँ जन्म के साथ उन्हें पाप्त नहीं होती। समाज द्वारा उन पर इन निर्योग्यताओं को थोपा जाता है। यह किसी भगवान की देन नहीं थी, यह सरासर धोखेबाजी का काम था। शूदों को नरक के डोर से बांध दिया गया था। इस कारण बहुत सी जाति जनजाति, अनपढ, दरिद, लाचार बनकर रह गई। अंधानुकरण के कारण बहुत से दलित आज भी सुखमय जीवन से

वंचित है। इन लोगों को एक समय का अन्न भी नसीब नहीं होता है, और एसी ही कई निर्योग्यताएँ है जो समाज द्वारा दलितों पर थोपी गई है।

1. अस्पृश्यता
2. सामाजिक निर्योग्यता
3. धार्मिक निर्योग्यता
4. आर्थिक निर्याग्यता
5. व्यावसायिक निर्योग्यता

1. अस्पृश्यता :–

जो स्पृश्य नहीं है, जो छू ने के योग्य नहीं है वह अस्पृश्य कहा जाता है। यह अस्पृश्यों पर थापी गई एक पकार की निर्योग्यता है। हिन्दू समाज में चोथे वर्ग के जिन लोगों को भेदभाव की दृष्टि से देखा जाता है, उन्हें अस्पृश्य समझ कर आम लोगों से दूर, गांव के अलग कोने में रखा जाता है। उनकी बस्ती हो या फिर पानी का तालाब, सब कुछ उच्च जाति के लोगों से अलग होता है। कई गाँवों मे आज भी यही पथा चली आ रही है।

डॉ. आम्बेडकर मानते है कि, “जन्म सिद्ध योग्यता के तत्त्व के अनुसार हिन्दू समाज का वर्गीकरण करें तो तीन वर्ग होते हैं। सर्व श्रेष्ठ और पवित्र कहलाने के लिए बाहमण वर्ग उसके नीचे बाहमणेत्तर वर्ग और जिस पर जन्मसिद्ध अयोग्यता और अपवित्रता थोप दी गई है एसा वर्ग बहिष्कृत वर्ग है।”[89]

अस्पृश्यों की दयनीय स्थिति पर अम्बेडकर दु:ख व्यक्त करते हुए बहिष्कृत भारत में लिखत हैं कि, “हिन्दुस्तान के गोरे स्पृश्य और काले अस्पृश्य इनमें वर्ण भेद इतना गहरा घुसा है कि अछूतों को स्पृश्यों के किसी भी पसंग में कोइ स्थान नहीं मिलता। यह अन्याय है। गैर दलित लोग यह भी स्वीकार नहीं करते”[90] “आज भी अस्पृश्यता उन्मुलन के कई पयत्न किये जा रहे हैं किन्तु स्थिति मं कोई बदलाव नहीं है। अस्पृश्यता सवर्ण मानस मे जडवत है। दिनमान ने इस कथन के पक्ष मे विभिन्न राज्यों के सर्वेक्षण पकाशित किए। जैसे–मैसुर राज्य की एक संस्कृत पाठशाला में हिन्दू धर्म गंथां के अध्ययन का अधिकार केवल बाह्मण छात्रां को ही है। मध्य पदेश के एक सर्वेक्षण में पाया

गया है कि 250 गाम पंचायतों में से 150 दलितों को एक साथ बैठने का अधिकार पाप्त नहीं है। गुजरात के 9 जिलों के 105 गांवों म से 39 गांवों में दलितों को सवर्णों के कुओं से पानी भरने पर पाबंदी है। राजस्थान अस्पृश्यता निवारण अभियान से संबंध पचारक सवर्णो की परिधि में ही चक्कर लगाते रहते हैं। अस्पृश्यता से संबंध पकाश में आने वाले मामले दर्ज ही नहीं करती। पंजाब के कपुरथला जिले के एक गुरूद्वारे से शादी-विवाह के समय ऊँची जाति के सिक्ख सामगो पाप्त कर सकते हं लेकिन निम्न जातियों के नहीं। हिमाचल पदेश के एक बौद्व मन्दिर में दलितों को अन्दर जाकर पार्थना-चक घुमाने का अधिकार नहीं है। इसके अलावा दलितों को किराये पर मकान भी नहीं दिया जाता है।"[91]

अस्पृश्यता एक ऐसा दंडनीय अपराध जिसे क्षमा नहीं किया जा सकता। वीर सावरकर ने अस्पृश्यता का अर्थ इस पकार बताया है- किसी एक जाति में जन्म होने के कारण उन स्त्री पुरुषों पर लादी जाने वाली जन्मजात अस्पृश्यता, अर्थात् अस्पृश्यता में जो विशेष घटक निषिद्व माना गया है। वह मानी हुई जन्मजात मान्यता है।[92]

मोरारजी देसाई का मत है कि, "जब तक अस्पृश्यता निर्मूल नहीं होगी, तब तक जातिवाद की समस्या हल नहीं होगी एसा मुझे लगता है।" अस्पृश्यता को हटाने का काम कठिन है। दो हजार सालों से रूढ हो गई बदी को नाबुद करना आसान नहीं था। जो साधु संतो ने पयास किया, फिर भी अस्पृश्यता की मात्रा बढती जा रही थी।"[93]

देसाई जी का यह कथन विचारणीय है। अस्पृश्यता सच्चे मानव धर्म का दोह है। हरिजनों की गणना चारों वणा में नहीं की गई। पुरानी वर्ण-व्यावस्था शनैः शनै : नष्ट हो गई। उसने आज जातियों का रूप ले लिया।[94]

2. सामाजिक निर्योग्यता :-

दलितों को समाज में अन्य उच्च जाति के लोगों के साथ मेल मिलाप करने और साथ में खडे रहने के अयोग्य माना। उनपर समाज में कई सामाजिक निर्योग्यताएँ लाद दी गई। उच्च लोग जिस पकार के वस्त्र धारण करते थे, वैसे वस्त्रों पर दलितों के लिए पतिबंध लगा दिए जाते थे। इतिहास पर दृष्टि डालें तो स्वतंत्रता पूर्व की एसी कई घटनाएँ हमें देखने को मिलती है। राजस्थान के 'जालोर' जिले के जमींदार ने दलित बालक को पेड से बांध कर इसलिए मारा क्योंकि उसने धुले हुए साफ

कपडे पहनकर जमींदार के सामने आने की हिम्मत की थी।95 उच्चवर्णियों को समाज में सारी सुविधाएँ पाप्त थी और उसी समाज में जिसे शूद, अन्त्यज, अछूत कहा जाता था। उन्हें दु:ख ही नसीब हुआ।

समाज में उन्हें सन्मान स जीने का कोई अधिकार नहीं था। मध्यपदेश के एक गांव की वह घटना याद आती है जिसमे तीन हरिजनों को अपनी मूँछे नीची रखने के बजाय ऊँची रख लेने पर गोली से उडा दिया गया।96 दलितों को केवल उच्च लोगों की सेवा करने को तत्पर रहने की आज्ञा का सदैव पालन करना पडता था। हमें लगता है सवर्ण आज भी दलितां को अपने पैर की जुती समझते हैं। उन्हें अपने मानवीय अधिकार देने के लिए मानों तैयार नहीं हैं।

दलित स्त्रियाँ गहने नहीं धारण कर सकती थीं। सवर्णों द्वारा उनका खूब शोषण होता था। मार्च 1934 में 18 सुत्री शिकायती पत्रों मे दलितां कों मानव अधिकारों से वंचित कर उन्हें गुलाम पशु से भी बूरी दशा मे रखने की सुचनाएँ हैं। जैसे भोजनालयों, धोबी घाट, नाई की दुकान और चाय की दुकाने, उपाहार गृहो, धर्मशालाओं, स्कूलां, कुआं, तालाब, नल, झरने, नदी तथा डाक घर आदि तक में अछूतों को पैर नहीं रखने दिये जाते, मन्दिर तो दूर की बात। हरिजन स्त्रियां को घुटनों से नीचे धोती बांधने की भी मनाई है। सवर्ण इलाके से मुर्दा निकालने पर रोक, काम ज्यादा मजदूरो कम, वह भी सडे अन्न के रूप में, दवाखाने में दवा नहीं और बच्चों को स्कूल भेजे तो शिक्षक उनके पश्नों के उत्तर तक नहीं देते थे।97

सदियों से सवर्ण हिन्दुओ ने दलितों को तिरस्कृत और तुच्छ समझा है। हमेशा अछत कहकर पुकारा है। सवर्ण हिन्दू इन दलित लोगा को अपनी बस्ती में नही रहने देते थ। गांवो के अपने कुओं व तालाबों का पानी तक नहीं छूने देते थे। दलितों के लिए मंदिर में पवेश वर्जित था। उन्हें पढाई-लिखाई और शिक्षा से वंचित रखा जाता था। अच्छी नोकरियों तथा व्यापार उनके लिए थे ही नहीं। वे गलियां साफ करना, जुते गांथना, टोकरियां बुनना या मरे हुए जानवरों की खाल उतारने जैसे काम ही कर सकते थे। उनमें से कुछ भाग्यशाली लोगों को खेतों या जमोंदारो के घरों में बंधुआ मजदूर के रूप में चाकरी करने या गांवो के दफ्तर में नौकर की हैसियत से काम करने का मौका मिल जाता था। यह निर्धारित था कि उनके बर्तन और जेवर किन धातुओं से बनाए जाने चाहिए। यही नहीं उनके उठने-बैठने-खाने के नियम थे। 98

3. आर्थिक निर्योग्यता :-

आर्थिक निर्योग्यता संपत्ति से संबधित है। दलितों को संपत्ति संगह करने का कोई अधिकार न था। इसलिए दलित आर्थिक दृष्टि से कभी भी उपर नहीं उठ पाये। उन्हं व्यावसायिक स्वतंत्रता न होने के कारण वे कभी अपनी आर्थिक स्थिति नहीं सुधार पाये। उन्हं अपनी जमीन खरीदने का कोई अधिकार नहों था। किसी दलित के पास जमीन हो भी तो वह सवर्णों द्वारा छीन ली जाती थी। उन्हें सोना–चांदी तांबा–पित्तल कुछ भी खरीदने का अधिकार नहीं था। दलितों की आर्थिक स्थिति पिछडी हुई है इसके कुछ कारण है। “अनुसूचित जातियों की 84 % जन संख्या गामीण बस्तियों और खेडों म रहतो है। जो पाय: गांवो से दूर शहरी क्षेत्रां मे सुविधा विहीन अधिकांश गंदी तंग बस्तियों में रहती है। उनका अधिक संख्या भाग गाँवों मे भूमिहीन नगरों में भवनहीन अपितु झुग्गी– झोंपडियों पर अनाथों की सुरत मे दलितों का जीवन बिछा हुआ मिलता है।”[99]

बिटीशां ने भी दलितों को आर्थिक रूप से निर्योग्य बनाने मे कोई कसर नहीं छोडी। पुराने जुतो की मांग घट जाने से उन्हं बेरोजगार होना पडा। पुराने बाजों की कद न रहने से कई दलित बेकार हो गये। सवर्ण स्त्रियों ने दाई का काम अपने हाथ मं ले लिया। इसलिए दलित महिलाएं बेकार हो गई और दलित रोगियों को सवर्ण चिकित्सकों ने छूना बंद कर दिया।

4. व्यावसायिक निर्योग्यता :–

दलितां के लिए कुछ एसे व्यवसाय थे जो केवल उन्हीं के योग्य समझे जाते थे। यह उनकी व्यवसायिक मर्यादा थी। इस मर्यादा के बाहर उनको अन्य व्यवसायों के लिए अयोग्य समझा जाता था। गाँव मे यदि कोई जानवर मर गया हो तो उसे घसीट कर गाँव के बाहर ले जाने का काय दलितां का था। गाँव की गंदगी साफ करने का कार्य भी उन्हीं को सोंपा जाता था और बदले में वे अपनी मुँह मांगी किमत नहीं ले सकते थे। वे आत्म–निर्भर नहीं रह सकते थे। उन्हं कुछ कार्य तो मुफ्त में करने पडते थे। क्योंकि वे दलित हैं। जितना काम वे करते थे उसका आधा भी उन्हं नसीब नहीं होता था। उन्हें किसी वस्तु कि खरीदारी का भी कोई हक्क नहीं था। वे केवल दूसरों की उतरण पर ही जीते थे। सवर्ण उन्हें डरा धमका कर अपना काम निकलवा लेते थे। उन्हें हमेशा उच्च वर्ग पर आश्रित रहना पडता था।

ज़ो कुछ भी उन्हें सवणां की मर्जी से मिलता उस पर ही उन्हें गुजारा करना पडता था। 1968 के दशक की दलित परिस्थिति का एक नमूना है। हिन्दी रिपब्लिकन भारत संपादकोय ‘स्वराज्य अधूरा है’ मं उद्धृत एक चमार परिवार के आत्म निवेदन से पता चलता है। मेरे परिवार म मेरी पत्नी और

चार बच्चे हैं। हम गाँव में मुर्दा मवोशियों को उठाते हैं। पिछले महीने गाँव में सिर्फ दो मवेशी मरे उनके चमडे से 4 रुपये मिले। दो जोडी गाँव के जुते बनाए थे उससे 3 रूपये की आमदनी हुई। फुटकर मजदूरी से 18 रूपया मिला। इस तरह 25 रूपिये मं बच्चों समेत छः पेट पालने पडते हैं। इतने से भूख की आग नहीं बुझती इसलिए पूरा परिवार मुर्दा मवेशी खाता है।100

सन 1928 के कानून के अनुसार सरकारी नौकरी कर रहे किसी महार को पूरे दिन और पूरी रात गुलामी करनी पडती थी। उसकी अनुपस्थिति में उसके परिवार के किसी सदस्य को उसका काम करना पडता था। इस कठिन सेवा के बदले महार की थोडी सी जमीन, जिसे वेतन कहा जाता था। थोडी सी मक्का और मामूली-सा वेतन मिलता था। इतना ही नहीं कपडा मिलों के दलित कामगारों को बेहतर वेतन वाले कामों से दूर रखा जाता था।101

5. धार्मिक र्नियोग्यता

दलितों का मंदिर में पवेश वर्जित था। डा. आम्बेडकर का कहना था कि जैसे युरोपीय लोगां द्वारा संचालित ‘Clubs’ के दरवाजे पर बोर्ड टंगे हुए मिलते थे कि कुत्ते और हिन्दुस्तानियों का पवेश वर्जित है। आज हिन्दू मंदिरों पर वैसे ही बोर्ड टँगे हैं। अंतर केवल इतना हैं कि हिन्दू मंदिरो में कुत्त जैसे जानवर पवेश कर सकत हैं कवल अछूत नहीं कर सकते।102

भगवान-पजा की आड मं कुँवारी लडकियाँ पाखंडी पुजारियों की हवस का शिकार होती रहें, यह समाज का दूषण हैं। इसी पकार का दषण दलित लडकियों के साथ हो रहा था। इसके अलावा मंदिरों मे पवेश न करने देना या शिवलिंग पर जाटवों को जल नहीं चढाने देना आदि।103 भीड मं 25 साल पूर्व मेह गांव के शिवमंदिर पर हिंसक जातोय संघर्ष छिडा था।104

इस पकार दलितों पर विविध निर्योग्यताएं थोप कर बाह्मणवादी संस्कृति ने दलितों के स्वतंत्र मानवोय अस्तित्व को नकार कर उन्हें पराधीन बनाया। समस्त नागरिक अधिकारों से वंचित रखा है। बाह्मणवादी संस्कृति के स्पष्ट निर्देश थे कि दलित अस्पृश्य मुख्य गांव से दूरी पर ही बसे।गाँव के कुएँ से पानी न खींचे।गाँव के मंदिर मे दाखिल न हो। जनेऊ न धारण करें, शिक्षा पाप्त न करं तथा धार्मिक गंथो का पाठ न करं। अस्पृश्यों से यह अपेक्षित था कि सबसे अधिक गंदे-धंध जैसे कि गंदगी की सफाइ (मानव मल भो शामिल था) मृत जानवरों की खाल उधेडना तथा कबं खोदना इत्यादि निकृष्ट कार्य ही करें। जाति बाहर ही नहीं वास्तव में उपजातियों से भी बाहर विवाह का पूर्ण निषेध सुनिश्चित करता है। एक समुदाय दूसरे समुदाय में गतिशिलता न हो। परिणामवरूप अस्पृश्यों

को सभी मामले मे संपूर्ण पृथकता का सामना करना पडता है। उम भेदभाव का शिकार होना पडता है। निम्न से निम्न कार्य करने पडते हैं इस के बावजद उन्हं कोई अधिकार नहीं है कि वे अपनो स्थिति मे कोई परिवर्तन कर सके और सन्मानपूर्वक जीवन जो सके। इन्हीं निर्योग्यताओं के चलते दलितों के अस्तित्व को चकनाचूर कर दिया।

1.10 निष्कर्ष

भारतीय समाज में वर्णवाद, जातिवाद, और वर्गवाद के कारण अनेक निर्योग्यताओं को दलितों पर थोपा गया। इन निर्योग्यताओं को शम्बूक, कर्ण, एकलव्य से लेकर आम्बेडकर जैसे पबल पतिभा संपन्न महानुभवों पर भी अत्याचार हुआ है। इन्होंने अपनी मेधावी पतिभा के कारण संघर्ष किया हैं। देश में कोमवाद, धर्मवाद, जातिवाद, वर्णवाद और वर्गवाद जैसी संकुचितता के कारण दलितों को हाशिए मे धकेल दिया है।

इस अध्याय में दलित साहित्य की संकल्पना को पस्तुत किया है। जिससे दलित विषयक अवधारणा स्पष्ट होती है। साथ ही तुलनात्मक अध्ययन के महत्त्व को समझते हुए तुलनात्मक अध्ययन की व्याख्या को देखा जा सकता है। दलितों की समस्याओं के कारण नवजागरण काल के कुछ समाज सुधारकों का योगदान परिलक्षित होता है। दलित जातियों का वर्गीकरण कर वर्ण व्यवस्था को समझने का पयास किया गया है। दलितों को अपने मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया। दलितों पर थोपी गई निर्योग्यताओं के कारण उनकी दयनीय स्थिति रही। स्वतंत्रता के बाद भी दलितों पर अत्याचार हो रहे हैं।

संदर्भ सुची

1. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : ओमपकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पकाशन, नई दिल्ली पृ. 344
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : ओमपकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पकाशन, नई दिल्ली पृ.13
3. आस्था के चरण: डॉ. नगेन्द पृ. 344
4. हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग : डॉ .कुसुमलता मेघवाल
5. गाँधी और दलित भारत जागरण : श्री भगवान सिंह भारतीय ज्ञानपीठ, न्यु दिल्ली पृ. 6/7

6. एलीनार जिलियट : डॉ. आम्बेकर स्मृति व्यास्थान तीन मूर्ति सभागार दिल्ली, 16 मार्च 1992

7. हिन्दी साहित्य में दलित चेतना : डॉ . आनंद वास्कर विद्या विहार पकाशन, कानपूर पृ. 17

8. दलित साहित्य की भूमिका : हरपाल सिंह आरूष जवाहर पुस्तकालय मथुरा पृ. 7

9. दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र : ओमपकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पकाशन दिल्ली पृ. 13, 14

10. स्मरणिका : बाबुराव बागुल संपा यशवंत मनोहर नागपुर का दलित साहित्य सम्मेलन दि. 17 और 18 जनवरी 1976 पृ. 8

11. सत्यकथा : सदा कह्यडे जुलाई 1970 दलित साहित्य च्या निमित्ताने।

12. दलित साहित्य का सौदर्यशास्त्र : ओमपकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पकाशन पृ. 15, 16

13. आम्ही मराठी वही पृष्ठ 15-5 दिपावली अंक 1973 पृ. 77

14. पबुद्ध भारत : केशव मेश्राम 1978

15. दलित साहित्य एक वाग्डमय : वामन निबांडकर मय चळवळच – पृ. 07

16. दलित साहित्य सिद्धांत आणी स्वरूप : बाबुराव बागुल 1978 पृ. 4

17. स्मरणिका : बाबुराव बागुल संपा यशवंत मनोहर नागपुर का दलित साहित्य सम्मेलन दि. 17 और 18 जनवरी 1976 पृ. 8

18. दसवें दशक का हिन्दी दलित साहित्य : डॉ .एन सिंह अभिनव पसंगवश जुलाई, सितम्बर 2002

19. दलित साहित्य का सांदर्यशास्त्र : ओमपकाश वाल्मीकि राधाकृष्ण, पकाशन नई दिल्ली पटना, इलाहाबाद पृ. 14, 15

20. डॉ .सी बी भारती 'हंस' नवम्बर 1996 के हवाले से दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : ओमपकाश वाल्मीकि राधाकृष्ण, पकाशन नई दिल्ली पटना, इलाहाबाद

21. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : ओमपकाश वाल्मीकि राधाकृष्ण, पकाशन नई दिल्ली पटना, इलाहाबाद पृ. 15

22. दलित साहित्य और सामाजिक न्याय : डॉ .पुरुषोत्तम पृ. 27

23. दलित साहित्य की भूमिका : हरपालसिंह आरूष, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा 2005 पृ. 110

24. दलित साहित्य सृजन : डॉ .पुरुषोत्तम सत्य पमी संदर्भ पृ. 17

25. समाज पबोधन पत्रिका : बाबुराव बागुल मार्च एपिल 1971 पृ. 34

26. अस्मिता दर्शन : त्र्य. वि. सरदेशमुख दिवाली अंक 1977

27. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : ओमपकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पकाशन नई दिल्ली पृ. 15

28. दलितायन मरमर : अवंतिका पसाद पृ. 5

29. दया पवार मुलाखात गो. म. कुलकर्णी महाराष्ट्र साहित्य पत्रिका दिवाली अंक 1983 पृ. 175-176

30. जातक दि. 01/03/1977

31. पा. केशव. मेश्राम दलित लेखकों के पहिले संमेलन 1958 पबुध्व भारत दि. 04/03/1958 पृ. 27

32. डॉ. म. ना. वानखडे सुद कांद बाबुराव बागुल पस्तावना गो पु देशपांडे मार्च 1973

33. दलित साहित्य का सांदर्यशास्त्र : शरणकुमार लिंबाले अनुवाद रमणीका गुप्ता वाणी पकाशन 2000 पृ 42

34. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : शरणकुमार लिंबाले अनुवाद रमणीका गुप्ता वाणी पकाशन 2000 पृ. 42

35. दलित साहित्य एक वाग्मयिन चळवळ : वामन निबाांलकर पृ. 20

36. समग्रा गांधी वाग्मय, खंड 49, पृ. 408

37. दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र : ओमपकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पकाशन, नई दिल्ली पृ. 22

38. दलित हस्तक्षेप : रमणिका गुप्ता संपादन ओमपकाश वाल्मीकि, शिल्पायन पकाशन, दिल्ली पृ. 15

39. खरीखरी बात : रमनिका गुप्ता संपपादकीय युधरत आमआदमी अंक 41-42 1998 पृ.

40. दलित हस्तक्षेप : रमणिका गुप्ता संपादन ओमपकाश वाल्मीकि, शिल्पायन पकाशन, दिल्ली पृ. 15

41. साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल : नया पंथ,अंक, 24, 25 जुलाई 1997 पृ. 104, 105

42. दलित साहित्य : एक आभ्यास अंर्जुन डांगले, 1978 महाराष्ट्र राज्य, साहित्य संस्कृति मंडल, पृ. 2

43. हिन्दी साहित्य का सौंदर्यशास्त्र : ओमपकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण पकाशन नई दिल्ली पृ. 22

44. तुलनात्मक अध्ययन निकष एवं निरूपण : पा. आय. एन. चंदशेखर, पकाशन संस्थान नयी दिल्ली, पृ. 13

45. वही पृ. 14

46. वही पृ. 14

47. वही पृ. 14

48. वही पृ. 17

49. हिन्दी दलित पत्रकारिता पर पत्रकार आम्बेडकर का पभाव : डॉ. श्योराजसिंह बैचेन, समता –110032 पकाशन, दिल्ली पृ. 55

50. डॉ. आम्बेडकर–अस्पृश्य और भारतीय संविधान : 1942 हिन्दी दलित मासिक 8 अपल 1975 पृ. 7

51. डॉ. आम्बेडकर व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व : डॉ. डी. आर. जाटव पृ. 176-177

52. भारत का संविधान सिद्धांत और संसदीय गुप की संगोष्ठी : 25-26 ऐपिल 1992 लोकसभा सचिवालय, नई दिल्ली पृ. 26-27

53. हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर आम्बेडकर का पभाव : डॉ. श्योराजसिंह बेचैन– समता पकाशन दिल्ली पृ. 59

54. चिरस्मरणोय महान व्यक्तित्व: बी.आर.आम्बेडकर, भाग 6 सी. बी. टी. पकाशन नई दिल्ली पृ. 102

55. भारत का संविधान : द्विभाषीसंस्करन कानून पकाशन 2002 जोधपुर अनूच्छेद 17 पृ. 13

56. वही पृ. 11

57. वही पृ. 229

58. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, लोक भारती पकाशन, इलाहाबाद पृ. 591

59. विवेकानंद : सुमित सरकार ,राजकमल पकाशन ,नई दिल्ली पृ. 96

60. ब्राह्मणांचे कसब फुले–समग वागमय : महात्मा ज्योतिबा फुल म. रा. सा. सं. मं द्वारा पकाशित 1969 पृ 50

61. सार्वजनिक सत्यधर्म फुले –समग वागमय : महात्मा ज्योतिबा फुले म. रा. सा. सं. मं द्वारा पकाशित 1969 पृ 351

62. डॉ. आम्बेडकर का आंदोलन और समकालिन मीडिया : कंवल भारती युद्धरत आम आदमी, अक्तुबर–दिसम्बर 2001 पृ–37 63 वही पृ. – 37

63. वही पृ.37

64. डॉ. आम्बेडकर : लाफइ एन्ड मिशन धनंजय कीर पृ 274

65. गाँधी और दलित भारत जागरण : भगवानसिंह –भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली –17 पृ–55

66. संपुर्ण गाँधी वागमय : खंड, 19–पृ–577

67. वही खंड 49 पृ. 408

68. सामायिक वार्ता हिन्दी मासिक पत्रिका : यंग इन्डिया 4 /6/1931 अंक मई 2005 दिल्ली से पकाशित

69. गाँधी और दलित भारत जागरण : श्री भगवानसिंह, ज्ञानपीठ पकाशन, पृ 35

70. वहीं पृ. 73,74

71. सावरकर समग के मुख पृष्ठ से – स्वातंत्र्यवीर सावरकर पभात पकाशन, दिल्ली

72. सावरकर समग खंड 7– स्वातंत्र्यवीर सावरकर पभात पकाशन, दिल्ली पृ. 312,313

73. समाजवाद और डॉ. लोहिया : डॉ. अमरज्योतिसिंह वाराणोका पिन्टर्स वाराणसी, पृष्ट 152

74. लोहिया बहुआयामी व्यक्तित्व धर्मवीर भारती मुख्तार अनीश एवं विजयकांत दिक्षित (संपादक) मता + स्वतंत्रता + सौंदर्य = लोहीया पृष्ट 15 लखनऊ राम मनोहर लोहिया स्मरणिका समिति 1984

75. समाजवाद और डॉ. लोहिया, डॉ. अमरज्योतिसिंह वाराणिका पिन्टर्स वाराणसी, पृष्ट 4

76. डॉ. लोहिया; आजाद हिन्दुस्तान में नये रूझान पृ 11,12

77. 1970 इ में युनेस्का द्वारा जारो किए गए आंतराष्ट्रीय अवार्ड के समय संयुक्त राष्ट्रीय द्वारा जारी वक्तव्य (स्त्रोत देवेन्द कुमार बैसन्तरी, भारत के सामाजिक कान्तिकारी, दलित साहित्य पकाशन संस्था, नयी दिल्ली। पृ 167

78. दलित साहित्य का समाजशास्त्र : हरिनारयण ठाकुर, भारतीय ज्ञानपीठ पकाशन नयी दिल्ली, पृ 275

79. भारतीय जन जातियां : हरिश्चंद्र उपंती पृ–1

80. वही पृ–2

81. आदिवासी भारत : योगेश अटल पृ–10

82. आदिवासी भारत : योगेश अटल पृ–10

83. दलित हस्तक्षेप: रमणिका गुप्ता, शिल्पायन,दिल्ली

84. राम एतिहासिक जीवन चरित्र : डॉ. रामपसाद मिश्र इतिहास और शोध संस्थान हहभुल भुलैया रोड महरौली नइं दिल्ली

85. ऋग्वेद:पुरुष सूक्त 10- 90 ऋषि नारायण

86. राम एतिहासिक पात्र : राम पसाद मिश्र, इतिहास शोध सस्थान, नइ दिल्ली

87. शुदों का पाचीन इतिहास: डॉ. राम शरण वर्मा पृ. 22

88. हु वेर शुद्रास : डॉ. आम्बेडकर पृ. 239

89. मूकनायक : 27 मार्च 1920

90. बहिष्कृत भारत : 3 जुन 1927

91. दिनमान : 19 मई 1986 पृ. 28

92. सावरकर समग : विनायक दामोदर सावरकर ,खण्ड 7 पभात पकाशन दिल्ली पृ. 232

93. मारो जीवन बोध : मोरारजी देसाई , संकलन रामलाल परीख–पृ. 18

94. हरिजन सेवक : गाँधीजी 17, दिसंबर 1955 अंक 42

95. रिपब्लिकन भारत : 6, मई, 1968

96. दैनिक नवभारत टाइम्स : 17; दिसंम्बर; 1967

97. हरिजन : अंगजी 09/02/1934

98. चिरस्मरणीय महान व्यक्तित्व बी. आर. आम्बेडकर : सी. बी. टी. पकाशन नई दिल्ली

99. हिन्दी की दलित पत्रकरीता पर पत्रकार अम्बेडकर का पभाव : डा. श्योराज सिंह बचैन – समता पकाशन दिल्ली, पृ – 72, 67

100. स्वराज्य अधूरा है : संपादकोय – सा, रिपब्लिकन भारत 4 मई 1968

101. चिरस्मरणीय महान व्यक्तित्व: बाबा साहेब आंबेडकर भाग : 6 सी. बी. टी. पकाशन नई दिल्ली पृ. 100-101

102. कोंगस और गाँधी ने अछूतों के लिए क्या किया ? : डा. आम्बेडकर पृ. 128

103. हिन्दी की दलित पत्रकारिता पर पत्रकार आम्बेडकर का पभाव : डा. श्योराज सिंह बेचैन, समता पकाशन दिल्ली पृ. 78

104. जनसत्ता : 12 मार्च 1992